॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

❀ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

(पञ्चम से दशम शतक)



श्रीश्रीगौरभगवत्-प्रियपार्षद्

परमाभिवन्दनीय

श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद

विरचित



सङ्कलनकर्ता—

श्री श्यामलाल हकीम,

श्री धाम वृन्दावन न्यौछावर १॥)

प्रकाशक—
श्रीश्यामलाल हकीम
लोई बाजार,
श्रीधाम वृन्दावन ।

प्रथम संस्करण—१०००
वि० सम्वत् २०१४— बसन्त पञ्चमी
श्रीचैतन्याब्द ४७३

मुद्रक—
लाला छाजूराम रानीलावाले,
श्रीसर्वेश्वर इलैक्ट्रिक प्रेस,
वृन्दावन ।

सम्पादकीय—

परमकरुण कलियुग-पावनावतार रसराज-महाभाव-स्वरूप श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की असीम कृपा से पञ्चम प्रकाशन प्रस्तुत-ग्रन्थ श्रीश्रीवृन्दावन-महिमामृतम् (५ से १० शतक) भक्ति-पूर्णहृदय पाठक-वृन्दों के करकमलों में सादर समर्पित है।

आपात दृष्टि से इस ग्रन्थ का विषय श्रीवृन्दावन-धाम की ही महिमा-वर्णन प्रतीत होता है, किन्तु सरस्वतीपाद ने धाम-महिमा-वर्णन के साथ साथ धामी-(श्रीव्रजेन्द्रनन्दन-वृषभानुनन्दिनी) एवं नित्य-लीला-परिकर (सखी, सहचरी, दासी) तथा धाम-उपकरण (जल-स्थल,द्रुम-लता, पशु-पक्षी आदिक) के तत्व-महत्व, रूप-स्वरूप एवं उपादेयता का भी जीता-जागता उज्ज्वल चित्र खींचा है।

कहीं परम-रमणीय लीला-स्थलों का एवं लीला उपकरणों का अद्भुत वर्णन है, तो कहीं नित्य-लीला परिकर वृन्द के सुन्दर सुषमामय स्वरूप शृङ्गार तथा मधुरसेवादि का विचित्र चित्रण किया है, और कहीं एक एक श्लोक में ही रतिरस-लम्पट श्रीललित-विहारि-ललितविहारिणि की अनिर्वचनीय अनेक लीलाओंके अगाध रसमय लीलामृत का सुचारु परिवेषण किया है, जिसे रसिक पाठक गण आस्वादन कर नवीन जीवन प्राप्त करते हैं।

जिन महाभाग्य साधकों का साध्यशिरोमणि मानसिक उपासना है अर्थात् श्रीवृन्दावन धाम में अन्तश्चिन्तित-देह (सखी-रूप) से श्रीवृन्दावनाधीश्वर श्रीयुगलकिशोर के परम कोमल चरण-कमलों की मधुरभावात्मिका सेवा करना ही जिनके साधन की

परमतम सीमा है; वस्तुतः उन साधक-वृन्दों के लिये यह ग्रन्थ एक अमूल्य-रत्न है। इसके नित्य अनुशीलन से साधक, साधन एवं साध्य की उज्ज्वल स्वरूप-छवि का अनुभव होने लगता है जिससे साधक की उपासना निरन्तर पुष्ट एवं उज्ज्वल हो उठती है।

श्रीवृन्दावन के ग्रन्थ-वर्णित दिव्य-चिन्मय स्वरूप का अनुभव प्राकृत-इन्द्रियों से होना सर्वथा असम्भव है, उसका साक्षात्कार केवल श्रीवृन्दावनविहारी की कृपा से भक्ति-तादात्म्य-प्राप्त इन्द्रियों के द्वारा ही हो सकता है। अतः परिदृष्यमान श्री वृन्दावन में वास करते हुए भक्ति-अङ्ग-प्रधान कलियुगधर्म श्री-नामसङ्कीर्तन का एक मात्र अवलम्बन लेकर श्रीयुगलकिशोर की कृपा की वाट तकते रहना ही साधक का परम पुरुषार्थ है। अहै-तुक-करुणागार युगलसरकार की अपार कृपा से जब कभी इन्द्रियगण को प्रेम-भक्ति का यत्किञ्चित् तादात्म्य प्राप्त होगा, तत्क्षण परिदृष्यमान श्रीवृन्दावन-धाम अपना अनिर्वचनीय अत्यन्तोज्ज्वल दिव्य चिन्मय स्वरूप निकटवर्ती साधक को अनुभव करा देगा। एवं तब ही वह जीव अपने अभीष्ट श्रीयुगल-किशोर की चरण सेवा को प्राप्त कर कृतार्थ हो सकेगा।

उदार पाठक-वृन्द मेरी त्रुटियों को न देखकर यदि इस ग्रन्थ रत्न से अपनी साधना में कुछ भी सहयोग एवं सुख अनुभव करेंगे, तो तुच्छ सम्पादक अपने को कृतार्थ मान कर सदा आभारी रहेगा॥

श्रीवृन्दावन रजाभिलाषी
श्रीश्यामलाल हकीम,
श्रीवृन्दावन॥

* श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः *

॥ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

पञ्चमं शतकम् ।

[१]

किञ्चिच्चन्दनकोटिजित्वरमहो कस्तूरिका-कोटिजित्
किञ्चित्किञ्चिदुदारसौरभमयं कर्पूरपूरादपि ।
किञ्चित्कुङ्कुमपङ्करङ्कणमहामोदं किमप्युल्लसत् -
सौरभ्येण विनिर्जितागुरु महाऽपूर्वं किमप्युद्भवत् ॥

अहो ! इस श्रीवृन्दावन का कोई कोई स्थल कोटि २ चन्दन वनों को पराजित करनेवाला है एवं किसी किसी स्थल ने कोटि कोटि कस्तूरी की राशियों को भी जीत लिया है तथा कोई स्थान कर्पूर के प्रवाह से उत्तम सौरभमय हो रहा है। कहीं कुङ्कुम की पङ्क का लेप हो रहा है जो महा आनन्दकारी है। कहीं कहीं तो अगरु को लज्जित करने वाली महा अद्भुत अपूर्व सुगन्धि छा रही है ॥१॥

[२]

नानापुष्प सुवासवृन्दमनिशं दिव्यं समुन्मीलय -
न्नानापानकरूपतां प्रकटयन्नाना-सुभक्ष्योदयम् ।
नानासान्द्ररसोल्लसत्फलभरं श्रीराधिकामाधव -
क्रीड़ावेशवशात्त्रुटन्मणिसरस्रङ्मेखलाद्यै र्युतम् ॥

श्रीवृन्दावन में दिनरात अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगंधि इधर उधर छा रही है। कहीं अनेक प्रकार के मकरन्द प्रवाहित हो रहे हैं एवं अनेक प्रकार के सुन्दर स्वादयुक्त भोज्य पदार्थ उपस्थित हैं। कहीं मधुर रसपूर्ण अनेक फलों से लदे हुए वृक्ष शोभायमान हैं और कोई स्थान श्रीराधामाधव के क्रीड़ा करते समय टूटे गए मुक्ताहारादि तथा माला-मेखलादि से परि-शोभित हो रहे हैं ॥२॥

[३]

अन्तरीयगसुरत्नमण्डपे स्वीयकुण्डमनु वार्षभानवी ।
श्यामलेन सहगानकौतुकं कुर्वती स्फुरतु मे सखीवृता ॥

श्रीराधाकुण्ड के निकट अन्तरङ्ग सुन्दर रत्नमण्डप में सखी-वृन्द के साथ श्रीवृषभानुनन्दनी श्रीश्यामसुन्दर के सहित गान-कौतुक कर रही हैं — ऐसी छवि मेरे चित्त में स्फुरित हो ॥३॥

[४]

सखीभिः सम्भूय स्वकरकमलद्वन्द्वकलितै –
र्जलैः सेकं राधा बहु विदधती नागरमणेः ।
सुधापूर्णान् वर्णान्नमित वदनेन्दोरलमलं
जितोऽस्मीत्याकर्ण्याऽसदुपरता यत्र किमिति ॥

श्रीराधाजी सब सखियों के साथ मिल कर नागरमणि (श्रीश्यामसुन्दर) के शरीर पर अपने दोनों कर-कमलों से जब अनेक जल सिञ्चन करने लगीं, तब श्रीश्यामसुन्दर अपने मुख-चन्द्र को झुका कर " और नहीं, और नहीं, मैं हार मानता हूँ " ऐसा कहने लगे। श्रीश्यामसुन्दर के ये अमृतमय वचन सुन कर श्रीराधाजी जल फैंकना बन्द कर क्या अद्भुत हंसी ?॥४॥

[५]

स्वल्पातिमञ्जुलनिकुञ्जपरीतह्रस्वै –
र्विस्तीर्णशाखिवर - पुष्प - सुकल्पवृक्षैः ।

वीते कदापि कुसुमाभरणं विचित्रा –
यत्राततान विहृती रसमूर्त्तियुग्मम् ॥

थोड़े और अति मनोहर निकुञ्जों से परिवेष्टित, छोटे तथा विस्तीर्ण सुन्दर वृक्षों के फूलों से सुसज्जित एवं कल्पवृक्षों से मण्डित इस श्रीवृन्दावन में पुष्प-भूषणों से भूषित होकर वे रसमूर्त्ति श्रीयुगलकिशोर विचित्र विचित्र विहार करते हैं ॥५॥

[६]

परस्पर-विलोचनाञ्चल चमत्कृतैः सस्मितं
परस्पर मुरुच्छलात् सपुलकाङ्कस्पर्शनैः ।
परस्पर-कथासुधारससरितप्रवाहैः सदा
परस्पर-महारतिर्जयति राधिका-कृष्णयोः ॥

परस्पर नैनों के कटाक्षों की चमत्कारिता में मृदु मधुर मुसक्यान के सहित अनेक छल पूर्वक एक दूसरे के पुलकित विग्रह को स्पर्श करने के लिए तथा एक दूसरे की कथामृत-रस—भरी नदी के प्रवाह द्वारा उमड़ी हुई श्रीराधाकृष्ण की परस्पर महारति जय युक्त हो ॥६॥

[७]

व्यञ्जत्कैशोरदिव्यद्रुतकनकनिभ-श्रीमदङ्गच्छटौघैः
शश्वन्नाना-चमत्कारिभिरतिमधुरानङ्गभङ्गीतरङ्गैः ।
श्यामप्रेम्णो विकारैर्घनपुलकततीर्गद्गदोक्त्यश्रु कम्पै -
रालीर्विस्मापयन्ती स्वरतिवनचरीः सैव राधेश्वरी मे ॥

श्रीराधाजी, अपने यौवनयुक्त दिव्य तप्त स्वर्ण की भांति सुन्दर कान्ति समूह के द्वारा, पुनः पुनः अनेक प्रकार की अति चमत्कारी मधुर कामभङ्गी तरंगों के द्वारा, एवं श्रीश्यामसुन्दर के प्रेमविकार जनित गम्भीर पुलकावलि, गद्गद् वाणी तथा अश्रु कम्पादि के द्वारा स्वानन्दमय वन चारिणी सखीगण को विस्मित

करती हुई श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं, वही मेरी स्वामिनी हैं ॥७॥

[८]

व्रजाद्याता वृन्दावनमतिमहाश्चर्यमधुर –
स्फुरल्लीलारूपच्छविसुरतवैदग्ध्यलहरी ।
स्व कुण्डस्थल्यान्तः शतशतगुणव्यञ्जिसुषमा –
चमत्कारादिर्मे स्फुरतु हृदि राधा सदयिता ॥

अत्यन्त महाश्चर्यमय मधुर स्फूर्ति प्राप्त लीला-रूप-सौंदर्य-सुरत-वैदग्धलहरीयुक्त श्रीराधा व्रजसे श्रीवृन्दावन आती हैं—एवं श्रीराधाकुण्ड स्थली की शत-शत गुण-शोभा एवं चमत्कारिता आदि को प्रकाश करती हैं, श्रीश्यामसुन्दर के सहित वह मेरे हृदय में प्रस्फुरित हों ॥८॥

[९]

श्रीवृन्दाविपिनप्रसारि — परमाश्चर्योल्लसत्सौरभं,
माधुर्यामृतसिन्धु-बन्धुर-महाज्योतिस्तरङ्गाद्भुतम् ।
नानाभूमिभिरुत्तरोत्तरचमत्कारातिरेकं मम,
श्रीराधाद्भुतकेलिकुण्डमुदयैस्तुण्डं कदा मण्डयेत् ॥

श्रीवृन्दावन में परम आश्चर्यजनक उल्लासमय सुगंधियुक्त जो श्रीराधाकुण्ड या श्रीराधा-केलि-वर्णन हैं, वह माधुर्यामृत सिन्धु की मनोहर अद्भुत महाज्योतिर्मय तरङ्गोंयुक्त है, अनेक लोकों को उत्तरोत्तर महाचमत्कृत करनेवाला है, वह श्रीराधाकुण्ड या श्रीराधा-केलि-वर्णन मेरे मुख में प्रकट होकर कब मेरी शोभा को बढ़ायेगा ? ॥९॥

[१०]

बृहद्विकचकाञ्चनाम्बुरुहकर्णिकायां स्थितौ,
तदीय — दलकेशरैरहह यत्र तौ युज्यतः ।

परस्परमतिस्फुरत्कनकनीलरत्नच्छवी ।
महारसिकदम्पती किमपि दोलिताङ्गौ मुहुः ॥

बहुत बड़े प्रफुल्लित स्वर्णकमल में विराजमान होकर, अहो ! उसके केसर दल समूह से मिलकर परस्पर एक दूसरे को अति सुन्दर स्वर्ण एवं नीलमणि कान्ति को प्रकाश करते हुए जब महा रसिक श्रीयुगलकिशोर अपने अङ्गों को बार बार डोलायमान करते हैं, तब कैसी आश्चर्यमय शोभा होती है ?॥१०॥

[११]

अनन्त – हरिराधिका-मधुरकेलिवृन्दैः सदा,
महाद्भुतमहो महारसचमत्कृतीनां निधिम् ।
महोज्ज्वलं महासुसौरभतमं च वृन्दावने,
समरोन्मद – तदीश्वरीदयित-दिव्यकुण्डं नुमः ॥

अहो ! श्रीराधाकृष्ण की अनन्त मधुरकेलिसमूह द्वारा जो सदा महा अद्भुत हो रहा है, एवं चमत्कारी महारस का समुद्र है तथा महान उज्ज्वल एवं महान सुगन्धिपूर्ण है, श्रीवृन्दावन में विराजमान केलि-उन्मत्त वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी के प्रिय उस दिव्यकुण्ड (श्रीराधाकुण्ड) की मैं स्तुति करता हूँ ॥११॥

[१२]

यद्वारि स्पृशतां सतो रसमयी काऽप्यद्भुताचेतसो–
वृत्तिः सद्य उदेति तत्र विहरत्यानन्दमूर्त्तिद्वयम् ।
शुद्धानङ्गरसैकलास्य-परमोत्कर्षं सुगौरोज्ज्वल–
श्यामं कुण्डमिदं श्रयेम परमं वृन्दाटवी मण्डनम् ॥

जिसका जल स्पर्श करने से शुद्धचित्त में किसी एक अद्भुत रसमयी वृत्ति का तत्काल ही उदय हो आता है, जो केवल विशुद्ध अनङ्ग रस के प्रवाह से सुशोभित है एवं सुन्दर गौर-उज्ज्वल कान्ति

युक्त है, उसमें आनन्दमय श्रीयुगलकिशोर नित्य विहार करते हैं, अतएव परम रमणीय श्रीवृन्दावन के भूषणस्वरूप श्रीश्यामकुण्ड की शरण लेता हूँ ॥१२॥

[१३]

श्रीगोवर्द्धन-मौलिमण्डन-महारत्नोत्तमं, राधिका-
कुण्डं　मोहनपुण्डरीकनयनप्राणेश्वरीवल्लभम् ।
घूर्णन्मौलिविलोलकुण्डलवरंतुण्डेन्दु विम्बोल्लसद्-
वंशं शंसति यत्र मादकगुणान् रोमाञ्चितोमाधवः ॥

जहाँ माधव पुलकित होकर मस्तक आन्दोलन करते हुए डोलायमान कुण्डलों से एवं मुखचन्द्र की छटा से चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं तथा अपनी वंशी में उन्मादनकारी गुणों का अलाप करते हैं, एवं जो कमलनैन प्राणेश्वरी वल्लभ श्रीमोहन को एकान्त प्रिय है, श्रीगोवर्धन का मुकुटमणि महारत्नश्रेष्ठ, यही श्रीराधाकुण्ड है ॥१३॥

[१४]

श्रीवृन्दावन शोभयाऽपि परयाश्लाघ्यां हरेर्वल्लभ-
श्रीगोवर्द्धनशैलराजशिरसाऽप्यत्यादरेणानताम् ।
राधाकृष्ण　महाद्भुतस्मरकलामाधुर्यशोभाभरां
वल्लीमण्डप मण्डलीं स्मर सखे ! श्रीराधिका-कुण्डगाम् ॥

हे सखे ! परम उत्कृष्ट श्रीवृन्दावन-शोभा के द्वारा भी जो प्रशंसनीय है, श्रीहरि प्रिय श्रीगोवर्द्धन गिरिराज भी जिसकी आदर से बन्दना करता है, श्रीराधाकृष्ण की काम-कलाओं की माधुर्य-शोभा से परिपूर्ण श्रीराधाकुण्ड स्थित उस लता-मण्डप समूह को स्मरण कर ॥१४॥

[१५]

असमोर्द्ध स्मरवर्द्धिनि राधाकुण्डे महारसाविष्टौ।
गौरश्यामकिशोरौ स्मर तौ रसविह्वलौ सखीवलये॥

असमोर्द्ध कामवर्द्धनशील श्रीराधाकुण्ड में सखीसमाज सहित महारस में आविष्ट एवं विह्वल उन गौरश्याम युगलकिशोर को स्मरण कर ॥१५॥

[१६]

दिव्यानन्तविचित्र — वैभवरसान्मुह्यद्वैकुण्ठेश्वर
गान्धर्व्वाहृदयैकबन्धु मधुर प्रेमोन्मदान्धाऽखिलम्।
विद्यानन्दसुधैकसिन्धुपरतो जाज्वल्यमानं क्षितौ
तद्वृन्दावनमप्रमेयरसदं प्राप्याऽन्यदीक्षेत कः ?॥

जो श्रीवृन्दावन अपने अनन्त विचित्र वैभवरस से वैकुण्ठपति को भी मोहित करता है, एवं श्रीराधा-हृदय-बन्धु श्रीश्यामसुन्दर के मधुर प्रेम द्वारा निखिल वस्तुओं को उन्मत्त तथा मदान्ध कर देता है, और इस पृथ्वी पर विद्यानन्द-सुधा के एकमात्र समुद्र के परे परम उज्ज्वल जो यह असीम रसदायक श्रीवृन्दावन है — उसे प्राप्त करके कोई फिर अन्य वस्तुओं को देखना चाहता है क्या ? ॥१६॥

[१७]

रूपाणि व्रजभीरुसीमभगवत् प्रेष्ठैर्निषेव्याणि ते
मुक्तैश्चारुविधानि सन्तु परमानन्दात्मवृन्दावन !
श्रीराधामुरलीमनोहर रसोदारे तु रूपे महा —
माधुर्य्यान्तिम-सीमनिस्मृति पथं यातेऽपि धन्यस्त्वहम् ॥

हे परमानन्द स्वरूप श्रीवृन्दावन ! आपके अनेक मनोरम रूपसमूह मुक्त और व्रज-गोपीगणों पर्यन्त भगवत्प्रिय भक्तों से

सेवित हों, किन्तु श्रीराधामुरलीमनोहर के महामाधुर्य की चरम सीमा को प्राप्त हुआ अतिरसमय जो अत्युत्कृष्टरूप है, उसकी स्मृति आने पर भी मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ ॥१७॥

[१८]

राधाकृष्ण - सुगानशिक्षणपरा गायन्ति यत्रोन्मदा
नानाश्चर्यविधं रसालशिखराण्यारुह्य पुंस्कोकिलाः ।
यन्नृत्यानि च वीक्ष्य शिखिनो नृत्यन्ति चित्रं व्यधु –
स्तद्गोष्ठीं शुकसारिका यदधि तद्ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

जहाँ आम्र वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हुए पुंस्कोकिलाओं के समूह श्रीराधाकृष्ण-विषयक सुन्दर गान-शिक्षा में संलग्न हुए उन्मत्त होकर अनेक आश्चर्यमय गान कर रहे हैं, एवं जिनकी नृत्य-कलाओं को देख कर मोरगण विचित्र नृत्य करते हैं, तथा शुक-सारिका जिनके संलाप का अनुवाचन करते हैं, उस श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ ॥१८॥

[१९]

सङ्गीतोत्सवरङ्गिकोकिलगणं नाट्योल्लसद्बर्हि सद्
भृङ्गीझंकृत-दिव्यवादमधुरं स्फुर्जल्लतामण्डपम् ।
राधाकृष्णनिषेवणातिरसवद् दासीजनापेक्षिता –
र्थापूरि द्रुमवल्लिवृन्दमुदयाद्वृन्दावनं सुन्दरम् ॥

सङ्गीत-उत्सव में निमग्न कोकिलाओं से जो मुखरित हो रहा है, नृत्य परायण मोरवृन्दों से जो उल्लसित है, एवं सुन्दर मधुकरों की दिव्य मधुर ध्वनि से जो गूंज रहा है, जो लताओं के मण्डपों से शोभित है तथा श्रीराधाकृष्ण के सेवा-परायण जो रसमय सखीवृन्द हैं उनके वाञ्छित प्रयोजन की सम्यक पूर्त्ति करनेवाली वृक्ष-लता-वृन्दों से सुशोभित सुन्दर श्रीवृन्दावन है — वह मेरे हृदय में उदित हो ॥१९॥

[२०]

अपारावारात्मप्रभविमल — चिज्ज्योतिरमृता –
म्बुधिद्वीपे वृन्दावनमतुलरोचिः स्मर सखे !
कदम्बानां वाटीपरिवृतमनन्तद्रुमलता –
निकुञ्जैर्मञ्जु श्रीरसिकयुग — सर्वस्वनिलयम् ॥

हे सखे ! पारावार रहित स्वयंप्रकाश विमल चिज्ज्योतिर्मय अमृत-समुद्र के द्वीप में अतुलनीय कान्तियुक्त श्रीवृन्दावन को स्मरण कर। वह (श्रीवृन्दावन) अनन्त कदम्ब-वाटियों से परिवेष्ठित है एवं अनन्त वृक्षलता-निकुञ्जों से सुशोभित है तथा श्रीरसिकयुगलकिशोर का सर्वस्व निवास-स्थान स्वरूप है ॥२०॥

[२१]

नमो नित्यं वृन्दावनतरुलताभ्यः करुणया
किरन्तीभ्यः सर्वानपि च पुरुषार्थान् सकृदपि।
विलोकात् सॅस्पर्शाच्छ्रवणकथनाच्च स्मरणतो
विभान्तीभ्यः पारे प्रकृतिरससारात्ममहसः ॥

जिनको एकबार मात्र स्पर्श करने से एवं जिनकी कथा एकबार मात्र सुनने, कहने या स्मरण करने से ही वे करुणावश होकर (धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि) सब पुरुषार्थों को प्रदान कर देते हैं और जो प्रकृति-रस सारात्मक ज्योति से परे विराजमान हैं, उन श्रीवृन्दावन के तरु-लताओं को मैं नित्य नस्कार करता हूँ ॥२१॥

[२२]

अतिस्वच्छेऽत्यन्तोज्ज्वल उरुविधोद्यत् परिमले
परागाणां पुञ्जैः श्रुतनवमरन्दैश्च सुभगे।
सुशाखाद्यैर्नीरन्धित उपरि वृन्दावनभुव –
स्तले राधाकृष्णाङ्घ्रिणि रसमयस्निग्धमधुरे ॥

अति स्वच्छ, अत्यन्त उज्ज्वल, बहुविधि सुगन्धि से सुवासित, परागपुञ्ज से एवं वृक्षों से चुचाई हुई नव मकरन्द से शोभायमान श्रीवृन्दावन की भूमि के ऊपर सुन्दर वृक्ष-शाखाएं घटाटोपवत् छाई हुई हैं एवं नीचे तलदेश रसमय स्निग्ध मधुर है, वहाँ श्रीराधाकृष्ण के युगचरण विहार कर रहे हैं ।।२२।।

[२३]

यत्रश्रीराधिका तद्रसविवश-सदानन्दयोः सर्वकाल –
स्थेमा प्रेमामृताब्धिः परमरसचमत्कारसीमाऽस्ति यत्र ।
यत्रैवाश्चर्यसीमा यदधि परतरो दिव्यसौभाग्यसीमा
श्रीवृन्दारण्यनामा जयति भगवतः सर्वधामातिधामा ॥

जहाँ तद्रसविवश सदानन्दस्वरूप श्रीराधिकाजी सर्वदा स्थिर-प्रेमामृत-समुद्र के समान विराजमान हैं, जहाँ परमरस की चमत्कारी सीमा है, जहाँ आश्चर्य की एवं दिव्य सौभाग्य की सीमा सर्वातिशायी है, समस्त भगवत्-धामों में शिरोमणि उस श्रीवृन्दावन-नामक धाम की जय हो ।।२३।।

[२४]

पन्चार्थान् प्रेमभक्त्यन्तान् विचिन्वन्ति वुधा मुधा ।
कृतार्थाः किल तिष्ठन्ति वृन्दारण्य-तृणाश्रिताः ॥

पण्डितगण प्रेमभक्ति पर्यन्त पञ्च-पुरुषार्थों का वृथा ही अन्वेषण कर रहे हैं, वे तो श्रीवृन्दावन के तृणमात्र का आश्रय ग्रहण करने से ही कृतार्थ हो सकते हैं ।।२४।।

[२५]

जीवन्नेव मृतप्रायोदेहादौ निरहंममः ।
कदा प्रेमरसस्यन्दे विन्दे वृन्दावने स्थितिम्॥

जीवित अवस्था में ही मृतप्राय होकर सब देहादि का "अहं

मम" भाव त्याग करके प्रेमरस वर्षाकारी श्रीवृन्दावन में कब मैं वास पा सकूंगा ? ॥२५॥

[२६]

पुनन्ति ब्रह्मरुद्रादीन् येषां चरणरेणवः ।
सर्वभावेन मे सेव्यास्ते वृन्दावनवासिनः ॥

जिनके चरणों की रज ब्रह्मा-शिवादिकों को भी पवित्र करती है, वे श्रीवृन्दावन-वासी सर्व भाव से मेरे सेव्य हैं ॥२६॥

[२७]

श्रीराधाकाननस्पर्शाच्छुद्धचिद्रसमूर्त्तयः ।
अप्यमी स्वपरादृश्या नमस्यः श्रीशुकादिभिः ॥

जिन्होंने श्रीराधाजी के तन का स्पर्श किया है, वे शुद्ध चिद्रस-मूर्त्ति होगए हैं एवं उनमें अपने-पराए का भाव अदृश्य हो गया है, अतः उन्हें श्रीशुकादिमहापुरुष भी नमस्कार करते हैं ॥२७॥

[२८]

सापराधाश्चये राधापदमाधाय चेतसि ।
वसन्ति वृन्दाविपनेऽन्यान् धन्यान् नमामि तान् ॥

जो अपराधी होकर भी चित्त में श्रीराधापदपद्मों को धारण करते हुए श्रीवृन्दावन में वास करते हैं, उन बड़भागी भक्तगणों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२८॥

[२९]

तद्भ्रूभङ्ग महानङ्गतृष्णाकृष्ण मुहुः स्तुतम् ।
वृन्दावनेश्वरी — दास्यलास्यमेवाभिलष्यते ॥

श्रीराधाजी की भ्रूभङ्गी मात्र से महा कामातुर श्रीकृष्ण जिस की वारवार प्रशंसा करते हैं, मैं उस श्रीवृन्दावनेश्वरी के दास्य-लास्य की अभिलाषा करता हूँ ॥२९॥

[३०]

मधुरमधुरकेलिं कुर्वदुद्वेलकामा –
म्बुधिरसवरसिन्धुस्यन्दि वृन्दावनान्तः ।
प्रतिपद सुषमैकाम्भोधि मज्जत्तनुश्रि
स्फुरतु किमपि गौरश्यामधामद्वयं नः ॥

मधुर से सुमधुर केलिपरायण, श्रीवृन्दावन में उमड़े हुए काम समुद्र के श्रेष्ठ रस-सागर की उत्पत्ति करने वाले एवं प्रतिपद में ही शोभासिंधु में मज्जनशील देहधारी कोई गौरश्याम युगलकिशोर हमारे हृदय में प्रस्फुरित हों ॥३०॥

[३१]

अन्योऽन्यं रूपशोभाललितरतिकलाचातुरीमाधुरीणां
विभ्राणावालिवृन्द – प्रतिपद – सुचमत्कारकारिप्रवाहान् ।
गौरश्यामौ किशोरौ मिथ उदितमहानङ्गरङ्गैकरम्या
वुद्यद्रोमाञ्चपुञ्जौ स्मरति सरसधीः कोऽपि वृन्दावनान्तः ॥

प्रतिपद में सखीगण के सुचमत्कारी परस्पर रूप-शोभा एवं ललित रति-कला-चातुर्य-माधुर्यादि के प्रवाह को धारण करने वाले, तथा एक दूसरे के प्रति उदित महा कामरंग के वशीभूत हुए अति रमणीय एवं पुलकित विग्रह श्रीगौरश्याम युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं। रसिकपुरुष ही उनका स्मरण करते रहते हैं ॥३१॥

[३२]

अनन्तसुषमानिधिः स्फुरदपारमाधुर्यभु –
रनन्तमति चन्द्रिकानिधिहरन्तसौभाग्यभुः ।
अनन्तभगवद्रसोत्तम रहस्यमूलस्थली
मदीहितमनन्तयत्विदमनन्त-वृन्दावनम् ॥

अनन्त-सुषमा-समुद्र, अनन्त माधुर्य-भूमि, अनन्त चित्-चन्द्रिका समुद्र, सौभाग्यभूमि एवं अनन्त भगवत्-रस के सर्वश्रेष्ठ रहस्य की मूलस्थली यह अनन्त श्रीवृन्दावन मेरी सब चेष्टाओं को अनन्तत्व दान करे अर्थात् मैं अनन्तभाव से श्रीवृन्दावन का आस्वादन कर सकूं ॥३२॥

[३३]

येषांमन्मथकौतुकोत्तरलयोः श्रीराधिकाकृष्णयोः
स्वच्छोदारतलस्थलीमिलितयोरानन्दमग्नात्मनाम् ।
आसारा निपतन्ति दिव्यमधुनो दिव्यैः प्रसूनैः फलै-
राकीर्येत मही खगैः कलकलं त्यक्त्वाऽचलैः स्थीयते ॥

आनन्दरस में मग्नचित्त हुए जिन कल्पवृक्षों के नीचे स्वच्छ एवं विशाल स्थलों पर मन्मथ-कौतुक-चञ्चल श्रीराधिकाकृष्ण मिलकर विराजते हैं, उनमें से दिव्य मकरन्दधारा वर्षित होती है, दिव्य कुसुम और फलों से पृथ्वी ढक जाती है तथा पक्षी समूह कलरव छोड़कर अचलरूप से अवस्थान करते हैं ॥३३॥

[३४]

महामधुर गुल्मकद्रुमलता-महामाधुरी –
धुरीण-धरणीतलं सुमधुरालि पित्सरभृगम् ।
महामधुरता धुरोऽधुरसवः सरिद्भूधरं
महामधुरभावदं मधुरिमैव वृन्दावनम् ॥

महामधुर वृक्ष गुल्म, लतादि एवं महामाधुर्य से मण्डित जिसका धरणीतल है, सुमधुर भ्रमर, पक्षी एवं मृगों से जो गुञ्जायमान है, जहाँ के सरोवर, नदी, एवं पर्वत महामाधुर्य के श्रेष्ठ साररूप हैं, ऐसा महामधुर भावदानकारी यह श्रीवृन्दावन साक्षात् माधुर्यरूप से ही प्रकट हुआ है ॥३४॥

[३५]

दिव्यानन्तरसात्मकप्रियफलैः पुष्पैश्च दिव्यामिता –
मोदैर्दिव्यपरागदिव्यमधुभिर्दिव्यैः खगानां कुलैः ।
दिव्यैः पल्लवकोरकादिभिरपि श्रीराधिकाकृष्णयोः
सन्तोषं समुपार्जयामि तरवो भूत्वाऽपि वृन्दावने ॥

दिव्य दिव्य अनन्त रसमय फूल-फलों से शोभित होकर दिव्य अपरिसीम सुगन्ध से, दिव्य पराग से, दिव्य मधु से तथा पक्षियों से व्याप्त होकर एवं दिव्य पल्लव-कोरकादि से मण्डित होकर मैं इस श्रीवृन्दावन में अनेक वृक्षों का शरीर धारण करके भी श्रीराधाकृष्ण को सन्तोषित करूंगा ॥३५॥

[३६]

आमूलद्रुमजातिविस्तृतमहासुस्निग्धशाखावतां
वृक्षाणामतिदिव्यपुष्पफलसम्भारैर्मनोहारिणाम् ।
आरुह्य द्वयमेव कौतुकभरात्तद्गौरनीलं महः
शाखा यत्र चिनोति खेलति तदेवाऽध्येमि वृन्दावनम्॥

जिस श्रीवृन्दावन में अतिदिव्य पुष्प फलादि द्वारा मनको हरण करनेवाले, मूलपर्यन्त विशाल पारिजातादि जाति के महा सुन्दर एवं स्निग्ध शाखाओं युक्त वृक्षों पर आरोहण करके गौर-श्याम श्रीयुगलकिशोर कौतुकवश पल्लव-पुष्पादि चयन करते हैं, खेल करते हैं, उस श्रीवृन्दावन का मैं सम्यक्रूप से ध्यान करता हूँ ॥३६॥

[३७]

या राधाया वरतनु नटेत्युक्तिमात्रेण नृत्येद्
गायेत्युक्ता मधुकररुतैर्विज्ञगानं तनोति ।
क्रन्देत्युक्त्या विसृजति मधूत्फुल्लिता स्याद्धसेति
प्रोक्ता शिलष्य द्रुममिति गिरा सस्वजे घृष्ठगुच्छा ॥

जो लता "हे वराङ्गिणी—नृत्य कर"–श्रीराधाकी इस उक्तिमात्र से ही नृत्य करने लगती है ; "गान कर"—ऐसा कहने से भ्रमर की झङ्कारवत् मनोमद गान करती है ; "क्रन्दन कर"—इस वचन से मधु वरसाने लगती है एवं "हास्य कर"—इस वाक्य से प्रफुल्लित हो उठती है और "वृक्ष को आलिंगन कर" इस उक्ति से पुलकित गुच्छ होकर वृक्ष को आलिङ्गन करती है—॥३७॥

[३८]

मत्प्राणेशं नम निगदितेत्याऽऽपतत्येव भूमा –
वित्थं तत्तद्वचनवशगा स्यामहं काऽपि वल्ली ।
श्रीराधायाः स्वकरविहित स्वन्वुसेकादि पुष्टा
वृन्दारण्ये मुदितहरिणा दत्तकान्तावराशीः ॥

"मेरे प्राणेश्वर को प्रणाम कर"—यह वाक्य सुनते ही भूमि पर पड़ जाती है, इस प्रकार श्रीराधा की आज्ञावशवर्त्तिनी होकर मैं श्रीवृन्दावन की कोई एक लता बनूंगी, जिससे श्रीराधा के अपने करकमलों से सुन्दर जल द्वारा सिंचित होकर पुष्टिलाभ करूंगी एवं श्रीहरि सन्तुष्ट होकर मुझको "मेरी कान्ता बनो" बोल कर श्रेष्ठ आशीर्वाद करेंगे ॥३८॥

[३९]

या श्रीर्नन्दनपुष्पभद्रप्रमुखे या वाऽथनैःश्रेयसे
तत्कोटि प्रगुणश्रियाऽतिमधुरं देदीप्त वृन्दावनम् ।
केलि श्रीमदनन्तचित्रसुरसं श्रीराधिकामाधवौ
नित्यं वेदशिरोऽतिदूरपदवीं यद्वैभवं गायतः ॥

नन्दनबन, पुष्पभद्र आदि वनों का जो सौंदर्य है, अथवा मुक्तिपद में जो वैभव है, उससे कोटि गुण अधिक सौंदर्य एवं वैभव से युक्त होकर अति मधुर श्रीवृन्दावन कान्ति विस्तार कर

रहा है। केलि-सौन्दर्ययुक्त, अनन्त वैचित्री-रसयुक्त है एवं वेद-शिरोमणिगण भी इसकी महिमा नहीं जानते—इस श्रीवृन्दावन के वैभव को श्रीराधामाधव नित्यगान करते हैं ॥३६॥

[४०]

ये नैःश्रेयसमाश्रितास्तुलसिकाद्यामोद संमोदिनो
ये मत्सौरभ-पारिजातकुस्मैर्ये नन्दिनो नन्दने ।
ये चान्येषु बनेषु सन्ति मुदिताः पुष्पन्धयानांगणा-
स्ते यत्रामिपतन्ति नित्यममितास्तां नौमि वृन्दाटवीम् ॥

ये समस्त भ्रमर नित्य मुक्तिपद में अवस्थान करते हैं, जो तुलसी आदि की सुगंधि में अतिशय आनन्दास्वादन करते हैं, जो नन्दनबन में महा सुगन्धियुक्त पारिजातादि कुसुमसमूह में आनन्दलुब्ध रहते हैं एवं जिन्हें कहीं दूसरे वनों में भी आनन्द प्राप्त होता है — वे समस्त भ्रमरवृन्द अनन्त अनन्त यूथों में नित्य जिस श्रीवृन्दावन में मुग्ध होकर पड़ते हैं, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

[४१]

धन्येऽस्मिन् धरणीतले तनुभृतां दातुं महोच्चं पदं
प्रादुर्भूतमतिप्रभूतमधुरानन्दाब्धि वृन्दावनम् ।
ये संसारमहाऽवटे निपतिता ये सर्वसंत्यागिनो
ये मुक्ताश्च य ईश्वराः सकृदपि प्रेक्ष्यैव मुह्यन्त्यहो ॥

अहो ! इस धन्य पृथ्वीतल पर जीवों को महोच्च पद देने के लिए अतिशय मधुर महानन्द-समुद्र श्रीवृन्दावन प्रादुर्भूत हुआ है —जो संसाररूप महागर्त में पड़े हुए हैं, जो सर्व त्यागी हैं, और जो मुक्त एवं जो ईश्वर हैं, वे भी इस श्रीवृन्दावन का एकवार दर्शन करते ही मुग्ध होजाते हैं ॥४१॥

[४२]

येऽत्यन्त विषयाविष्टा ब्रह्मनिष्ठाश्च ये मताः ।
प्रेक्ष्यानन्देन मूर्च्छन्ति सकृद् वृन्दावनीश्रयम् ॥

जो लोग विषयों में अत्यन्त आविष्ट हो रहे हैं और जो ब्रह्मनिष्ठ कहे जाते हैं, वे भी केवल एकवार ही इस श्रीवृन्दावन की शोभा दर्शन कर आनन्द से मूर्च्छित हो जाते हैं ।।४२।।

[४३]

श्रीमद्वृन्दावनस्यैव प्रभावोऽयं महाद्भुतः ।
यत् स्वसम्बन्धगंधेऽपि बन्धकृद्रससिन्धुदः ॥

श्रीमद्वृन्दावन का यही अद्भुत प्रभाव है कि, जहाँ उसके सम्बन्ध की लेशमात्र भी गंध है, वहाँ वह रस-समुद्र प्रदान करने के लिऐ उसे चिर बन्धन में आबद्ध किए रखता है ।।४३।।

[४४]

वृन्दावनस्य महिमा न हि मादृशगोचरः ।
बबन्ध स्वगुणैर्दिव्यैर्यच्छ्रीमत्पुरुषोत्तमम् ॥

श्रीवृन्दावन की महिमा मुझ जैसे व्यक्ति के गोचरीभूत नहीं है, क्योंकि इसने अपने दिव्य गुणों द्वारा श्रीमत्पुरुषोत्तम को भी वशीभूत कर रखा है ।।४४।।

[४५]

अत्युन्मदमहाप्रेमरससारैः सुसम्भृतम् ।
आत्मवत् स्वीयसकलं भज वृन्दावनं वनम् ॥

अत्यन्त उन्मद महाप्रेमरससार से सुसज्जित एवं अपनी समस्त वस्तुओं के प्रति आत्मवत् व्यवहारशील श्रीवृन्दावन नामक वन का भजन कर ।।४५।।

[४६]

धनपुत्रकलत्रादिममता मम तापदा ।
इति त्यक्त्वाऽखिलं वृन्दावनमेव च मे वरम् ॥

धन, पुत्र, कलत्रादि के प्रति जो मेरी ममता है, वही मुझे तापित करनेवाली है। अतएव वह समस्त त्यागकर यह श्रीवृन्दावन ही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है ॥४६॥

[४७]

महाऽसहानि दुखानि सुखान्युन्मादकानि वा ।
वृन्दावनदृढ़प्रीतिं नालं चालयितुं हि माम् ॥

महा असहनीय दुखराशि और उन्मत्त करने वाले अनेक सुख भी मेरी श्रीवृन्दावन के प्रति दृढ़ प्रीति को चलायमान नहीं कर सकते ॥४७॥

[४८]

श्रीमद्वृन्दाटवीकुञ्जपुञ्जे नित्यविहारिणौ ।
गौरश्याममहाश्चर्यकिशोरौ मम जीवनौ ॥

श्रीवृन्दावन के निकुञ्जों में नित्य-विहार करनेवाले गौरश्यामात्मक महाश्चर्यमय श्रीयुगलकिशोर ही मेरे जीवन हैं ॥४८॥

[४६]

मन्दप्रज्ञास्त एवात्र मन्दभाग्यास्त एव हि ।
ये वृन्दावनमाश्रित्य राधाकृष्णौ न भेजिरे ॥

वे मन्दबुद्धि हैं एवं वे मन्दभागी हैं, जो श्रीवृन्दावन में रहकर भी श्रीराधा का भजन नहीं करते ॥४६॥

[५०]

इदं महच्छोचनं मे महांश्च वत विस्मयः ।
न यद्वृन्दावनस्थोऽपि राधाकृष्णौ भजेद्रसात् ॥

यही मुझे बड़ा शोक है और यही मुझे बड़ा भारी आश्चर्य है कि श्रीवृन्दावन में वास करते हुए भी लोग प्रेमपूर्वक श्रीराधाकृष्ण का भजन नहीं करते ॥५०॥

[५१]

न लोकचिन्ता नो धर्मचिन्ता न देहगा।
श्रीमद्वृन्दावने राधाकृष्ण भावभृतो मम॥

श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण की भावनायुक्त हुआ, मुझे न लोकचिन्ता है और न धर्म चिन्ता, और न ही देहादि की चिन्ता है ॥५१॥

[५२]

ये नित्यानिर्विकारा निरतिशयगुणा निष्प्रपञ्चस्वभावाः।
निर्दोषानित्यमुक्ता निगमगण-समुद्गीत-दिव्यानुभावाः।
आनन्दापार-सम्विद्रसघनवपुषः कृष्णभावैकमग्ना -
स्तान् वन्दे श्रीलवृन्दावनतरूनिकरान् सर्वसर्वार्थदातॄन्॥

जो नित्य, निर्विकार, असमोर्द्धगुणवान् एवं अप्राकृत स्वभाववान् निर्दोष, नित्यमुक्त हैं तथा जिनके दिव्य अनुभाव समूह को वेदगण नित्य समुच्च स्वर से गान करते हैं, जो आनन्द तथा असीम ज्ञान-रसघन विग्रह धारण करनेवाले हैं और कृष्णभावैक मग्न हैं—तथा निखिल जगत् के सर्व पुरुषार्थों को देनेवाले हैं, ऐसे श्रीवृन्दावन के वृक्षों की मैं बन्दना करता हूँ ॥५२॥

[५३]

दिव्यानेकविचित्रपुष्पफलभारानम्रशाखान् महा -
विस्तीर्णान् परमोच्छ्रितान् खगकुलैः संरावकोलाहलान्
नीरन्ध्रान् दलपल्लवैस्तत इतो मत्तालिमालाकुलान्
वन्दे स्यन्दिमरन्दसान्द्रसुसुधान् वृन्दाटवीशाखिनः॥

दिव्य दिव्य अनेक विचित्र पुष्प-फलों के भार से जो झुक रहे हैं बहुत दूर तक विस्तृत एवं बहुत ऊंचे हैं, पक्षियों के कोलाहल से जो मुखरित हो रहे हैं एवं पत्र-पल्लवों के द्वारा जो छिद्र-रहित हैं,

जिनके चारों ओर अलिगण गुञ्जार कर रहे हैं, ऐसे उत्कृष्ट रसघन-सुधाराशि वरसानेवाले श्रीवृन्दावन के वृक्षों की मैं वन्दना करता हूँ ॥५३॥

[५४]

ऊर्द्ध्वप्रेक्षणमोहनाक्षिवदनं श्रीराधिका-तर्जनी –
मुत्तोल्यामृतभाषितेन तलगा सन्दर्शयेन्मोहिनी ।
येषां दिव्यफलानि नागरवरः संपात्येत् सादरं
स्वामिन्येवमवाचिनोति भज तान् वृन्दावनशाखिनः ॥

मोहिनी श्रीराधिका जिन वृक्षों के नीचे अवस्थान करके तर्जनी को उठाते हुए अमृतमय वाक्य विन्यास द्वारा श्रीश्यामसुन्दर को अपने मोहनकारी नेत्रों को, जो ऊपर देखने से अपूर्व छवि धारण करते हैं, तथा अपने मुखचन्द्र को दिखाती हैं–नागरवर उन बताए हुये दिव्य फलों को नीचे फैलाते हैं एवं श्रीराधा उन समस्त फलों को संग्रह करती हैं—श्रीवृन्दावन के उन वृक्षवृन्दों का भजन कर ॥५४॥

[५५]

महाज्योतिरूपाः प्रतिपद महानन्दमधुरा
महातुङ्गा शाखाविततिषु महाविस्तृतियुताः ।
महार्थान् वर्षन्तो निरवधि महापुष्पफलिनो
महीयांसो वृन्दाविपिनतरवो भान्ति महताम् ॥

महाज्योतिस्वरूप, प्रतिपद—पद में महानन्द मधुर, महोच्च शाखा विस्तारपूर्वक महार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्ष एवं प्रेमादि को वर्षन करने वाले महा महातम श्रीवृन्दावन के वृक्ष-शोभित हो रहे हैं ॥५५॥

[५६]

श्रीमद्वृन्दावनविटपिनः सच्चिदानन्दसान्द्रा –
श्चन्द्रादित्यप्रमुखनिखिलज्योतिरेकाणुभासः ।

शाखापत्रादिभिरविमिताः सर्वदिव्यर्त्तुसेव्याः
सर्वोत्तापच्छिदुरशिशिरच्छाययाढ्या जयन्ति ॥

श्रीमद्वृन्दावन के वृक्षराज सच्चिदानन्दघन स्वरूप हैं, चन्द्र सूर्यादि निखिल ज्योति समूह उनकी ज्योति का एक कण मात्र हैं अथवा वे समस्त इनके ज्योति कण से प्रकाशित होते हैं। वे असीम शाखा-पत्रादि द्वारा युक्त हैं तथा समस्त दिव्य ऋतुओं द्वारा सेवित हैं, वे सर्व तापों को छेदन करनेवाली शीतल छाया संयुक्त होकर सर्वोत्कर्ष से विराजमान हैं ॥५६॥

[५७]

एता वल्लीविततय उरुस्नेहविक्लिन्नचित्ताः
श्रीमद्वृन्दावनभुवि महा भूतयोमातृभूताः।
आश्रीयन्ते हरि हरि वहिर्वस्तुबुद्धिं विधूय
यैर्धीमद्भिः सततमिह वाऽमुत्र वा ते कृतार्थाः ॥

हरि ! हरि !! इस श्रीवृन्दावन में महाविभूतिशाली एवं माता के सदृश अतिशय स्नेहार्द्रचित्तयुक्त इन लताओं में बाह्यवस्तु बुद्धि त्याग कर जो बुद्धिमान पुरुष इनका निरन्तर आश्रय ग्रहण करते हैं वे सब इस लोक मे एवं परलोक में कृतार्थ होजाते हैं ॥५७

[५८]

कैवल्याद्यखिलार्थथुत्कृतिकृतः केचिन्महाबुद्धयो
योगीन्द्राः खगरूपतामुपगता नन्दन्ति यच्छाखिषु।
सम्यक् प्रस्फुरितैश्च युक्तिनिवहैः सर्वार्थतत्साधना -
त्यन्तोच्छेदकृदुच्चकैः कलकलास्तां नौमि वृन्दाटवीम् ॥

कैवल्य मुक्ति आदि समस्त पुरुषार्थों को थुत्कार करके कोई कोई महाबुद्धिमान योगीन्द्रगण पक्षीरूप धारण कर जिस श्रीवृन्दावन के वृक्ष वृक्ष पर आनन्द प्राप्त करते हैं और सम्यक्रूप

से प्रस्फुरित युक्ति द्वारा धर्म-अर्थ-काम मोक्षादि समस्त पुरुषार्थों को एवं उनके साधनों को सर्वथा नाश करनेवाली उच्च कल-कल ध्वनि करते हैं—उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५८॥

[५६]

श्रीवृन्दावनमवनी – प्रकटं प्रकृतेः परात्परं सुरसम् ।
राधामाधवनित्याक्रीड़ं संत्यज्य सर्वमाश्रयत् ॥

पृथ्वी पर प्रकटित अप्राकृत एवं परात्पर सुरसशाली श्रीराधामाधव के नित्यक्रीड़ावन—इस श्रीवृन्दावन का सर्वत्यागी होकर आश्रय ग्रहण कर ॥५६॥

[६०]

वृन्दारण्यमगण्यप्रभावमनुभावयन्महाभावम् ।
गौरश्यामल दम्पत्यविचल कन्दर्प केलि भजेत् ॥

अगणित प्रभावशील महाभाव के अनुभव को दान करनेवाले एवं श्रीगौरश्याम युगलकिशोर के अविचल कन्दर्पकेलि-स्थल—इस श्रीवृन्दावन का भजन कर ॥६०॥

[६१]

अत्यवश्येन्द्रियमपि मां सकल विधातोऽपि संशोच्यम् ।
अङ्गीकरोति राधाकेलिवनं चेन्महाकृतार्थोऽस्मि ॥

इन्द्रियों के अति वशीभूत हुए और सर्व प्रकार से शोचनीय मुझको श्रीराधाकेलिवन यदि अङ्गीकार करें, तो मैं महा कृतार्थ हो जाऊंगा ॥६१॥

[६२]

आस्तां दुर्मतिकोटिदुश्चेष्टा कोटिरप्यास्ताम् ।
परिभूतिकोटिरस्तु श्रीवृन्दारण्य माऽस्तु ते विरहः ॥

कोटि कोटि दुर्बुद्धि आवें अथवा कोटि-कोटि दुश्चेष्टाएं हो

जाएं या कोटि कोटि अपयश ही क्यों न होजाएं, तथापि हे श्रीवृन्दावन ! मुझे आपका विरह कभी न हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥६२॥

[६३]

स्त्रीनाम्नि दुष्टनरके विण्मूत्रश्लेष्मपूयाद्यैः ।
पूर्णे गतेऽपि कर्णे स्ववान्तवन्निवस राधिकारामे ॥

विष्टा, मूत्र, श्लेष्मा और पीवादि से पूर्ण स्त्री-नामक दुष्ट नरक के विषय में सुनकर भी उसे वमनवत् जानकर त्याग पूर्वक श्रीराधा के उपवन (श्रीवृन्दावन) में वास कर ॥६३॥

[६४]

हरिरति वृन्दावनरति-विवेक-विरतीश्च दुरमुक्तिरर्ति ।
स्त्रीरूपा हरिमाया तदुपरमायातिदूरतोऽपायः ॥

स्त्रीरूपा हरिमाया—हरिभक्ति को वृन्दावन-प्रीति को एवं विवेक-वैराग्यादि को दूर फैंक देती है। उससे बचने का उपाय यही है कि उससे दूर रहना चाहिए ॥६४॥

[६५]

उन्मत्तमेव कुरुते योषिद्दृष्ट्यैव दुष्टमदिरेव ।
अति वनवसतिरशक्या हा वृन्दारण्य किन्नु मे भविता?॥

स्त्री जाति के दर्शन करते ही दुष्ट मदिरा के समान उन्मत्त ही होना पड़ता है। इस वृन्दावन में वास करना भी बहुत असाध्य है, हा श्रीवृन्दावन ! मेरे लिए क्या उपाय है ?

[६६]

अति दुर्वारा इन्द्रियवैरिण आमर्दयन्ति सततं माम् ।
बध्वा बध्वाऽत्यार्त्तिदकारायां हा हरे परित्राहि ॥

मुझे अत्यन्त पीड़ा देने वाले कारागार में बार बार बाँध

करके ये अत्यन्त दुर्दान्त इन्द्रिय-वैरीगण निरन्तर पीड़ा देते हैं, हे हरे ! मेरी रक्षा करो ॥६६॥

[६७]

कन्दर्प सविषविशिखै र्दिवधि मम दह्यमानस्य ।
वृन्दावनेऽपि निवसन् हरि हरि न हि निर्वृणोमि किं कुर्वे ॥

कामदेव के विषैले वाणों से निरन्तर मैं जल रहा हूँ। हाय ! हाय !! वृन्दावन-वास करके भी मुझे शान्ति न मिली !!! अब मैं क्या करूं ? ॥६७॥

[६८]

तरुणीतनुविड्भाण्डं हृदयं विदुषामपीह मादयति ।
तच्छ्रवणदर्शनाद्यै रहितो वृन्दावनं तद्धयायस्व ॥

तरुणी-शरीररूप विष्ठा का पात्र विद्वान् गणों के हृदय को भी उन्मत्त कर देता है ; अतएव उसके देखने एवं उसकी बात सुनने से रहित होकर श्रीवृन्दावन का ध्यान कर ॥६८॥

[६९]

प्रज्ज्वालयति समस्तं देहं कामाग्निना प्रमोहयति ।
दृष्ट्यैव च नवतरुणीकुतस्तर्हि स्वार्थसिद्धिं प्रत्याशा ? ॥

नव तरुणी की कामाग्नि सर्वाङ्गको जलाये जाती है, दृष्टिपात से ही मोह उत्पन्न कर देती है, फिर और स्वार्थसिद्धि की आशा कहाँ रही ? ॥६९॥

[७०]

कामक्रोधात्यन्धो लोभवशोऽहं वसामि राधायाः ।
केलिवने परमिच्छुर्भाव महो नास्ति मे लज्जा !! ॥

अहो ! काम-क्रोध से तो मैं अति अन्ध होरहा हूँ, लोभ के वशीभूत हूँ—श्रीराधाकेलिवन में वास करता हूँ, और परम श्रेष्ठ भाव की इच्छा करता हूँ ! मुझे लज्जा भी नहीं आती ॥७०॥

[७१]

कामादिगाढ़मूढ़ो लिप्सुरहं निगमगूढ़सद्भावम् ।
वृन्दारण्य उषित्वा तत्करुणैकैव तत्र मे शरणम् ॥

मैं कामादि द्वारा गाढ़ता से मोहित हो रहा हूँ, किन्तु वेदगूढ़ सद्भाव के पाने का इच्छुक हूँ, अतः श्रीवृन्दावन में वास करते हुए एकमात्र इसी की करुणा की शरण ग्रहण करता हूँ॥७१॥

[७२]

कृत्वा पाणितले कपोलमसिकृन्नेत्राम्भसां धारया
धौतं हा मुरलीधरेति करुण कुर्व्वन् मुहः क्रन्दनम् ।
आसीनो विजने क्वचितरुतले वृन्दावनान्तः कदा
वत्स्याम्येकरसाश्रयः शिथिलित प्राणस्थिति व्यापृतिः ॥

हथेली पर धरे हुए कपोल को अश्रुधारा से निरन्तर धोता हुआ, "हा मुरलीधर", पुकारते हुए बारबार रुदन करता हुआ, श्रीवृन्दावन के किसी एक निर्जन वृक्ष के नीचे बैठ कर—मैं शृङ्गार-रसाश्रय होकर प्राणों की रक्षा करने की चेष्टा भी कुछ न करके कब श्रीवृन्दावन वास करूंगा ?॥७२॥

[७३]

यो व्याघ्रीरिव योषितो विषमिव स्वाद्वन्नमर्थं महा-
नर्थप्रायमसाधुलोकमिलनं सर्वार्थविभ्रंशवत् ।
किञ्चिनमात्र परिग्रहं ग्रहमिव स्वात्मेन्द्रियं शत्रुवन्
मन्येत प्रणयी हरौ स हि वसेत् साध्वत्र वृन्दावने॥

जो (मनुष्य) श्रीहरि की प्रीति में स्त्री जाति को व्याघ्रिवत्, स्वादिष्ट-अन्न को विष के समान, धन को महा अनर्थवत और असाधु लोगों के संघ को सर्वस्व नाश करने वाले के तुल्य, थोड़े मात्र संग्रह को भी (महानिष्टकारी) ग्रहवत् एवं अपनी इन्द्रियों को

शत्रु के समान जान सकता है—वही इस श्रीवृन्दावन में उत्तमरूप से वास कर सकता है ॥७३॥

[७४]

कामिन्यालोकमात्रात् क इह न विसृजेल्लोकलज्जादि सर्वं
तत् सक्तं शास्त्रगुर्वादिकमहह किमप्यत्र रोद्धुं न शक्तम् ।
तस्मात् कामप्रदाहैर्यदि मरणभयं दुसहा वा स्वगर्हा –
वर्हापीड़ाद्यभावं तदनुभव हठात् प्रोह्य वृन्दावनेऽङ्गम् ॥

इस संसार में कामिनी के दर्शनमात्र से ही लोक-लज्जादि सब कुछ कौन नहीं त्याग कर सकता ? अहो ! शास्त्र गुरु आदि भी स्त्री-आसक्त पुरुष को किसी प्रकार भी रोक नहीं सकते ! अतएव कामाग्नि से यदि मरने का भय लगता है, एवं अपनी निन्दा को सहन नहीं कर सकते, तो इस शरीर को बलात्कार से श्रीवृदावन में लाकर मोर-पुच्छधारी श्रीकृष्ण के आद्य-मधुर भाव का अनुभव कर ॥७४॥

[७५]

योषित्सूचकशब्दतोऽपि मदनोमामन्धबुद्धिं करो –
त्येष क्रोध उपेति चान्धतमसी कुर्वन् समस्ता दिशः ।
लोभः क्षोभयते मनो निरवधि श्रीधाम्नि वृन्दावने
नाशस्तन्न घटिष्यते ध्रुवमतो जह्यामिहाङ्ग हठात् ॥

"स्त्री" सूचक शब्द से भी काम मुझे अन्धबुद्धि कर देता है, इस क्रोध ने समस्त दिशाओं में अन्धकार कर रखा है, एवं लोभ निरन्तर ही मन को क्षुब्ध किए रखता है। हाय ! श्रीधाम श्रीवृन्दावन में भी इनका नाश हुआ नहीं ! अतः बलपूर्वक इस शरीर का पात ही करना होगा ॥७५॥

[७६]

सर्वोपेक्षामयबलदयः शृङ्खलाभङ्गदक्षो
रक्षा वीक्ष्योन्मृतवदवलामात्रमक्षोभचित्तः ।
सर्वाधरं स्वाशनमुपनयन् देहरक्षोपयोगि
क्षौणीवत् स्यामहह सहनः कर्हि वृन्दावनेऽहम् ॥

हाय ! बल, दया आदि से समस्त उपेक्षामय बुद्धि धारण करते हुए, माया की शृङ्खलाओं को तोड़ने में निपुण हुआ, तथा राक्षस को देखने से जैसे कोई अति मृतकवत् हो जाय, उसी तरह नारी दर्शन करने से मृतकवत् होकर एवं क्षोभ-रहित चित्त से हर स्थल पर देह-रक्षा के उपयोगी अन्नादि पदार्थों को संग्रह कर, पृथ्वी की भांति सर्व सहनशील हो कर कब मैं श्रीवृन्दावन में वास कर सकूंगा ? ॥७६॥

[७७]

गायन् राधामुरलिधरयोः सुन्दरं केलिवृन्दं
विन्दन्नन्तस्तदनुभवानन्द निष्पन्दभावम् ।
निन्दन् भोगानहह सकलान् हा प्रिय श्यामलेति
क्रन्दन्नुच्चैः परमविकलः कर्हि वृन्दावने स्याम् ॥

श्रीराधामुरलीधर के सुन्दर केलिवृन्द का गान करते-करते, हृदय में उसके अनुभवानन्द जनित निष्पन्द भाव को प्राप्त होकर समस्त भोग-विलासादिकों की निन्दा करते हुए "हा प्रिय श्यामल !!" कह कर उच्च स्वर से रुदन करता हुआ कब इस श्रीवृन्दावन में परम विकल होकर मैं वास कर सकूंगा ?॥७७॥

[७८]

महापतितपावनं भवमहाहिभीताऽवनं
समस्तनिजसङ्गतस्वमुखचिद्घनीभावनम् ।

महामुनिवरैः सदा विहितभावनं जीवनं
ममैकमिह राधिकारमणधाम वृन्दावनम् ॥

महा पतित-पावन, भवरूप महासर्प से भयभीत जनों के रक्षक, अपने समस्त सौहार्द प्रयोग करने के लिए अपनी ओर उन्मुख करके चिद्घन भाव में भावित करने वाला, महामुनि गणों के नित्य ध्यान का विषयीभूत, और मेरा एकमात्र जीवनभूत यह श्रीराधिकारमण—धाम श्रीवृन्दावन ही है ॥७८॥

[७६]

नित्यंरत्युत्सुकान्तः करणमतिरसासक्तितः सन्नभावं
कान्ता हस्ते गृहीत्वा मुहुरुरुपुलकं गूढ़कुञ्जेषु यान्तम् ।
श्रीमद्वृन्दावनान्तः सततमधिवसन् कञ्चन श्यामलाङ्गं
राधैकप्राणमात्मन्यनुसर ललिताद्यात्मभावं किशोरम् ॥

नित्य रतिरस में उत्सुक चित्त, एवं रति आशा में व्याकुल होकर कान्ता को हाथ से पकड़ कर बारबार अति रोमाञ्चित विग्रह से गुप्त कुञ्जों में जाने वाले—श्रीराधा के महाप्राण स्वरूप, ललितादि (नायक) भावाविष्ट अथवा ललितादि सखीवृन्द के आत्मस्वरूप किसी श्यामकिशोर का श्रीमद्वृन्दावन में निरन्तर वास करते हुए आत्मा से (स्वरूपदेह) से अनुसरण कर ॥७६॥

[८०]

वीथ्यां वीथ्यां भ्रमदतिरसादुन्मदानन्दलोलं
रोलम्बानां पथि पथि घटाः क्षिप्यदङ्गे पतन्तीः ।
सङ्कटयाङ्ग मुहुरतिहसद्धेलयाऽन्योन्यमङ्गे
वृन्दारण्ये निवस भज तद् गौरनीलं द्विधाम ॥

अतिशय रसवश गली गली में भ्रमणशील, उन्मादमय आनन्द के लिए चञ्चल, पथ-पथ में बारबार अङ्गों पर पतनशील

भ्रमरों को दूर करने वाले, पुनः पुनः हास्ययुक्त हाव-भाव से एक दूसरे के अङ्ग पर अङ्ग धारण करनेवाले गौरनील द्युति-श्रीयुगल-विग्रह (श्रीराधाकृष्ण) का भजन कर एवं श्रीवृन्दावन में वास कर ॥८०॥

[८१]

तं नैवात्र कृताकृते वितपतस्तं नैव मायास्पृशे –
त्तं सर्वेऽपि गुणा भजन्ति महतां कांक्षन्ति सम्पदः ।
तं सर्वेस्तुवते विरञ्चिप्रमुखास्तं राधिकामाधवौ
स्वासन्नैकतमं मुदा गणयतो वृन्दावनं यः श्रितः ॥

जिसने श्रीवृन्दावन का आश्रय लिया है, उसे कर्म या अकर्म तापित नहीं कर सकते, उसे माया स्पर्श नहीं कर सकती, एवं सकल महागुण राशि उसका भजन करते हैं । सब सम्पदा उसी की आकाँक्षा करती है, ब्रह्मादि देवता उसकी स्तुति करते हैं और श्रीराधामाधव आनन्दपूर्वक उसे अपने निकटवर्ती गणों में अन्यतम गणना करते हैं ॥८१॥

[८२]

सान्द्रानन्दसुधामयैर्दशदिशः शीतच्छटामण्डलैः
सिञ्चद्भिः फलपुष्पपल्लवदलाद्याभारवल्लीद्रुमैः ।
कृष्णप्रेमरसाकुलैः खगकुलैरानन्दकोलाहलै
रम्यं रत्नमयस्थलीविलसितं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

दशों दिशाओं में सान्द्रानन्दामृतमय शीतल कान्ति मण्डलों का जहाँ विस्तार है, फल-पुष्प पल्लव-पत्रादि के भार से झुके हुए लता-वृक्षादि से शोभायमान, एवं कृष्ण-प्रेम रसाकुल आनन्द-कोलाहल में मस्त पक्षी-समूह द्वारा जो रमणीय है, रत्नस्थली से भूषित उस श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ ॥८२॥

[८३]

यत्त्रैगुण्यमये समुज्ज्वलमथ प्रद्योति विद्यामये
सर्वस्योपरि जाज्वलीति मधुराश्चर्येण यज्ज्योतिषा।
श्रीवृन्दावनमप्रमेयमधुर श्रीमत् समस्तं सदा
राधाकृष्णविचित्रकेलिवलितं तन्मे मनोगाहते॥

जो त्रिगुणमय जगत् में समुज्ज्वल है, जो विद्यामय (ब्रह्म विद्यामय) जगत् में भी देदीप्यमान है एवं जो मधुर आश्चर्यमय ज्योति द्वारा सबके ऊपर प्रकाशमान है, वही श्रीवृन्दावन असीम शोभायुक्त समस्त द्रव्यों से निरन्तर परिपूर्ण है और श्रीराधाकृष्ण की विचित्र केलिविलास से वलित है—उसी में ही मेरा मन अवगाहन करता है ॥८३॥

[८४]

यद्दिव्यैः सकलर्त्तुभिः सुमधुरैरासेवितं यल्लता –
वीरुद् भूरुहगुल्मकादिभिरनाद्यन्तैर्घनं चिद्घनैः।
यद्दिव्याम्बुसरः सरिन्मणिगिरिश्रीरत्नवल्लीगृहै –
र्दिव्यैर्यच्चविचित्रवत् खगमृगैस्तत् पश्य वृन्दावनम्॥

जो श्रीवृन्दावन समस्त सुमधुर दिव्य दिव्य ऋतुओं से सेवित हो रहा है, अनादि अनन्द चिद्घन विस्तृत लता-गुल्मादि से पूर्ण हो रहा है, जो दिव्य जलपूर्ण सरोवरों और नदियों तथा मणिमय पर्वतों तथा श्रीरत्नलतागृहों से संशोभित होरहा है, एवं जो दिव्य पक्षि-मृगों से विचित्रता धारण कर रहा है—उस श्रीवृन्दावन का दर्शन कर ॥८४॥

[८५]

श्रीवृन्दावनमेव पावनतमं विज्ञानमुख्याखिलात्
श्रीवृन्दावनमेव साधनतमं सर्वार्थलब्धौ हठात्।

श्रीवृन्दावनमेव साध्यपरमोत्कर्षैकविश्रामभूः
श्रीवृन्दावनात्मकोटिपरमप्रेष्ठं न सेवेत कः ॥

श्रीवृन्दावन ही निखिल मुख्य-विज्ञानों से पावनतम है, श्रीवृन्दावन ही अनायास सर्व अर्थों (धर्म-अर्थ-काम ऐवं मोक्ष) की प्राप्ति का महा साधन है, एवं श्रीवृन्दाबन ही सर्वोत्कृष्ट साध्यों का एकमात्र अधिष्ठान है ऐसे कोटि प्राणतुल्य परम प्रियतम श्रीवृन्दावन का कौन सेवन नहीं करेगा ? ॥८५॥

[८६]

या प्राचीनभवौघसञ्चित महादुर्वासनाच्छेदिनी
या श्रीश-द्रुहिणादि-दुर्गम-महामाधुर्य सम्वेदिनी ।
यात्मानन्यजनापराधविततेर्मातेव नो वेदिनी
सा राधापदमोदिनी विजयते वृन्दाटवी मोहिनी ॥

जो अनेक जन्मों की संचित दुर्वासनाओं को नाश करनेवाला है, जो लक्ष्मी, नारायण, ब्रह्मादि देवताओं को दुर्गम महा-माधुर्य भली प्रकार ज्ञापन कराने वाला है, जो मातृवत् अपने अनन्य भक्तों के अपराधों को क्षमा करने वाला है, वह मनोहर श्रीवृन्दावन श्रीराधा के चरण-कमलों को (हृदय में) धारण कर आनन्द प्राप्त कर रहा है, उसकी जय हो ॥८६॥

[८७]

औज्ज्वल्यस्यपरावधिर्मधुरिमैकान्तप्रकर्षो महा -
नन्दौघान्त्य चमत्कृतिर्हरिकृपा-स्नेहादि पूर्णोदयः ।
सर्वाश्चर्य कदम्बमौलिरचल श्रीराधिकामाधवो -
त्तुङ्गानङ्गरसोत्सवं विजयते वृन्दावनं मोहनम् ॥

उज्ज्वलरस की परम सीमा, माधुर्य का एकान्त प्रकर्ष, आनन्द राशि की परम चमत्कृति, हरिकृपा-स्नेहादि के पूर्ण उदय

युक्त, सर्वाश्चर्य शिरोमणि, अविचल सौंदर्यमय श्रीराधामाधव को उत्तुङ्ग अनङ्ग रसोत्सव दान करनेवाले इस मनोहर श्रीवृन्दावन की जय हो ॥८७॥

[८८]

तीर्त्वा मायामयाब्धिं तर किमपि परब्रह्मचिज्ज्योतिरब्धिं
स्वादं स्वादं ततः सन्तर नर ! भगवज्ज्योतिरानन्दसिन्धुम् ।
संप्राप्य प्रेमसारोज्ज्वलविमलरसाम्भोधिमस्यैव दिव्य –
द्वीपेऽप्याश्चर्यवृन्दाटवि कुरु ललिते प्राणमेवोपहारम् ॥

हे मानव ! मायामय-समुद्र के पार होकर किसी एक अनिर्वचनीय परब्रह्म की चिज्ज्योति का आस्वादन करने के पश्चात् भगवज्ज्योति के आनन्द-समुद्र को सन्तरण कर । इसी भगवदानन्द समुद्र में ही सुरम्य आश्चर्यमय श्रीविमल रस समुद्र को प्राप्त करके वहाँ अपने प्राणों का उपहार दान कर ॥८८॥

[८९]

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं तत्तुरीयं
श्रीवैकुण्ठं कृष्णपूर्यो व्रजश्च ।
त्यक्त्वा सर्वानर्थजातार्थजातं
वृन्दारण्यं पश्य भावाग्रदृष्ट्या ॥

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तुरीय, श्रीवैकुण्ठधाम, श्रीकृष्णपुरी समूह (श्रीद्वारका, मथुरादि) व्रजलोक एवं सकल अनर्थ और विषयों को त्याग कर भाव-प्रवण दृष्टि से श्रीवृन्दावन के दर्शन कर ॥८९॥

[९०]

श्रीवृन्दावनवासविघ्नजनकान्यारुध्यखान्यन्तरे
पश्यन्नावस शुद्धचिद्रसघनं तद्धाम संमोहनम् ।
काङ्क्षन् नित्यमिहैव मंक्षु वपुषः पातं महामङ्गलं
दूरे भोगकथा प्रयत्नमपि च प्राणस्थितौ सन्त्यजन् ॥

श्रीवृन्दावन में विघ्न पैदा करनेवाली इन्द्रियों को अन्तर निरुद्ध करके, इस सम्मोहन धाम को शुद्ध चिद्रसघन विवेचना करते हुए, एवं यहाँ इस शरीर का महामङ्गलकारी पतन (मृत्यु) व्याकुल प्राणों से नित्य आकांक्षा करते हुए, प्राणों की रक्षा के निमित्त भी भोगादि प्रयत्नों को त्याग कर इस श्रीवृन्दावनधाम में सम्यक् रूप से वास कर ॥६०॥

[६१]

दिव्यानन्तस्फुटित-कुसुमामोद मत्तालिमाला –
झङ्कारेण प्रतिपद - महानन्द - माध्वीकवृष्ट्या ।
उड्डीयानैर्दिशि दिशि महारम्यरागैः परागै –
र्वन्दे वृन्दाविपिन उदितं दिव्यशाखीन्द्रवृन्दम् ॥

दिव्य दिव्य अनन्त प्रस्फुटित पुष्पों की सुगन्धि से, मत्त भ्रमरों की झङ्कार से, प्रति पद पद पर महानन्द सुधारा वर्षन करने से, दशों दिशाओं में उड़ने वाली महा रमणीय रङ्ग-विरङ्गी पराग से—परम शोभित श्रीवृन्दावन के दिव्य वृक्षश्रेष्ठों की मैं वन्दना करता हूँ ॥६१॥

[६२]

दिव्यानन्ताद्भुततम–महारम्य–जातिद्रुवल्ली –
र्दिव्याशेषर्त्वनुगम – महासत्फलोरुप्रसूनाः ।
राधाकृष्णप्रणय–परमाश्चिद्घनाः कामरूपा
वृन्दारण्ये सकलपुरुषार्थात्युदाराः स्मरामि ॥

दिव्य अनन्त अद्भुततम महा रमणीय अनेक प्रकार के वृक्ष तथा वल्लीसमूह समस्त दिव्य ऋतुओं में अति उत्तम महाफल एवं अनेक कुसुम प्रदान करते हैं। ये श्रीराधाकृष्ण के प्रधान प्रीति-

पात्र हैं, ये चिद्घनरूप एवं अपनी इच्छानुरूप रूपधारण करने वाले हैं ; श्रीवृन्दावन में समस्त पुरुषार्थों को दान करने में परम उदार हैं ; मैं इन वृक्षवल्ली-समूह को स्मरण करता हूँ ॥६२॥

[६३]

नानारत्नमयैर्विलक्षणफलैर्नानाप्रसूनोद्गमै —
र्नानापल्लवपत्रगुच्छकलिकावृन्दादिभिः सुन्दरैः ।
नानाश्चर्यविसारिसौरभभरैरानन्दखेलारुतै —
र्नानाश्चर्यखगैर्मनो मम हृतं वृन्दाटवी शाखिभिः॥

श्रीवृन्दावन के वृक्षराजों ने—अनेक प्रकार के विलक्ष (सुलक्षण) फलों से, नानाविधि पुष्पों के विकास से, सुन्दर-सुन्दर नाना विधि पल्लवगुच्छ-कलिकाओं से, एवं नाना प्रकार की आश्चर्यजनक इधर-उधर सञ्चारित सौरभ से तथा आनन्द-क्रीड़ा-मत्त कोलाहल-मुखरित नाना विधि आश्चर्यमय पक्षी-समूह से, मेरे मन को हरण कर लिया है ॥६३॥

[६४]

नानारत्नमयोरु शाखिरुचिरै—र्नानामणिपक्षिभि—
र्नानारत्नमयप्रसूननिचयैः रत्नामृताङ्कैः फलैः ।
नानारत्नसुधामरन्दलहरी निःस्यन्दिभिः शाखिभि—
र्नानारत्नमयस्थलीषु लसितैर्देदीप्ति वृन्दावनम् ॥

अनेक विधि रत्नमय बहु वृक्षों से शोभित होकर, नाना मणिमय पक्षियों से भूषित होकर, नाना विधि रत्नमय पुष्पों से सुसज्जित होकर, अनेक रत्नमय अमृत फलों से समुल्लसित होकर एवं नाना रत्नमय सुधा-मधु लहरी वर्षणकारी नानाविधि वृक्षों से तथा नाना रत्नमय स्थलों से शोभित होकर श्रीवृन्दावन देदीप्यमान हो रहा है ॥६४॥

[६५]

सखि ! तरुणतमालः कश्चिदस्मिन्निकुञ्जे
वरकनकलतावत् कौतुकात्पर्यरम्भि ।
अहह स तु बलान्मे पश्य ना कारि किंवा
कथमिव कुटिला मे प्रत्ययं यान्तु सख्यः ?॥

हे सखि ! इस निकुञ्ज में किसी तरुण-तमाल ने मुझ से श्रेष्ठ कनकलतावत् परिरम्भन किया। अहो ! देख, उसने मुझसे से क्या नहीं किया है ? किन्तु मेरी कुटिला सखीगण इस बात का कैसे विश्वास करेंगी ? ॥६५॥

[६६]

अन्यानन्यान् केशबन्ध-प्रकारान् अन्यानन्यान् पत्रभङ्गीविभेदान् ।
अन्या अन्या माल्यवस्त्रादिभूषाः कुर्वन्नास्ते रात्र्यहस्त्वत्सखा मे ॥

तुम्हारा सखा दिव्यरात्री में बहुविधि से मेरा केश-बन्धनादि करता है, बहुविध पत्र-भङ्गी-रचना और अनेक प्रकार के भावों से माल्य-वस्त्रादि भूषा रचना किया करता है ॥६६॥

[६७]

नित्यं सन्मुखसन्मुखं मुखविधुं धत्तेऽनिमिषेक्षणो
नित्यं सन्मुखमेव पश्यति मयैवाजस्रगोष्ठीपरः ।
आधायैव शयति मां हृदि मयैवावर्त्तयेत् पार्श्वकं
सख्युस्ते सखि सर्वनागरमणेः प्रीतिः कथं वर्ण्यताम्॥

वह नित्य मेरे मुख के संमुख अपने मुखचन्द्र को स्थापन करता हैं, नित्य केवल मेरे साथ अनन्त इष्टगोष्ठी किया करता है, मुझे हृदय पर धारण कर शयन करता है, हाय सखी ! सर्वनागर-मणि तुम्हारे सखा की प्रीति कैसे वर्णन की जा सकती है ? ॥६८॥

[६८]

प्रिय सखी ! मम वृत्तं पृच्छ मा भाग्यमीदृक्
क नु मम कथयेयं त्वयहंतान् विलासान् ।

धृतवति करमेव श्यामले क्वास काहं
किमिव च करकोऽसौ किं व्यधान्न स्मरामि ॥

हे प्रिय सखी ! मेरा वृत्तान्त और कुछ मत पूछो ; हाय मेरा भाग्य ही ऐसा है ! हाय ! मैं किसी को या तुम्हें अपने अनन्त विलासादि की कथा क्या कहूँ ? श्यामसुन्दर के मेरा केवलमात्र हाथ पकड़ते ही, मैं कहाँ हूँ ? मैं कौन हूँ ? अथवा यह हाथ कैसा है ? क्या हुआ ? मुझे कुछ भी तो स्मरण नहीं है ॥९८॥

[९९]

वेणीं गुम्फति दिव्यपुष्पनिचयैः सीमन्तसीमन्यहो !
सिन्दूरं निदधाति कज्जलमयीं निर्म्मीति रेखां दृशोः ।
दिव्यं वासयते दुकूलमसकृत्ताम्बूलमप्याशये –
दित्थंभूतरतिः सखा तव न मां तल्पे निधत्तेऽङ्कतः ॥

अहो ! तुम्हारा सखा दिव्य फूलों से मेरी वेणी-गुन्थन करता है, सीमन्त देश में सिन्दूर भरता है, नेत्रों में काजल की रेखा अङ्कन करता है, दिव्य दिव्य वस्त्र धारण कराता है एवं पुनः पुनः ताम्बूल खिलाता है। इस प्रकार रति-परायण होकर वह मुझे गोद से फिर शय्या पर भी नहीं उतारता ॥९९॥

[१००]

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु दूर चले गये हैं, महा कलियुग निकट आगया है, श्रीवृन्दावन की प्रीति के बिना कृष्ण-प्रेम कैसे प्राप्त होगा ? ॥१००॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृत का पञ्चम शतक समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥
* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

षष्ठं शतकम्

[१]

सर्वानेव सदा स्तुवन्स्ततस्त इतः सर्वान् सदा प्रीणयन्
सर्वेषां सुखसम्पदः स्वभिलषन् सर्वात्मभावं भजन् ।
सर्वाग्रे विनयातिभाव-नमित-ग्रीवो निरस्ताखिला -
पेक्षस्तु स्वयमावसाम्यहमिदं वृन्दावनं पावनम् ॥

सबकी सदा स्तुति करते हुए, इतस्ततः सबको सन्तुष्ट करते हुए, सब के लिए सुख-सम्पदा की सम्यक कामना करते हुए, सर्वत्र सम-भाव रखते हुए, सब के सामने विनयपूर्वक मस्तक झुकाते हुए, सर्वापेक्षा से रहित होकर मैं स्वयं इस पवित्र श्रीवृन्दावन में वास करूंगा ॥१॥

[२]

मायां काञ्चनकामिनीमयमहामोहान्धताकारिणीं
सर्वस्वार्थनिवारिणीं निजगुणश्रेयः समुत्सारिणीम् ।
प्राज्ञस्यापि प्रतारिणीमतिमृषैवोदास्य सच्चारुतां
दूरादेव महाभयात् परिहरन् सेवेत वृन्दावनम् ॥

कामिनी-काञ्चनमय महामोहान्ध करनेवाली माया सब स्वार्थों का निराकरण कर देती है, अपने गुण एवं मङ्गल को दूर

कर देती है, बुद्धिमान पुरुष की भी वञ्चना करती है। इस माया की सुन्दर रमणीयता को भी अति मिथ्या जान कर दूर से ही इसका त्याग करते हुए श्रीवृन्दावन का सेवन करना कर्त्तव्य है ॥२॥

[३]

श्रीशाद्यैरपि दुर्लभाद्भुतपदाकाङ्क्षी निहीनोऽप्यहो
नित्यं त्वय्यपराधकृत्तव रसं नैवाणुमप्याप्लवन् ।
नैव त्यक्तुमिहोत्सहे कुविषयान् धर्म्मादिविस्मारकान्
तल्लज्जाभयशोकमोहवलितं मां त्राहि वृन्दावन ॥

हे श्रीवृन्दावन ! मैं अति हीन होते हुए भी किन्तु लक्ष्मी-नारायणादिकों को जो दुर्लभ है—उस अद्भुत पद की आकांक्षा करता हूँ, मैं नित्य ही आपके प्रति अपराध करता हूँ एवं अणुमात्र भी आपके रस में प्लावित नहीं हो पाता, और धर्मादि को विस्मृत कराने वाले कुविषयों को भी त्याग नहीं कर पाता, लज्जा-भय-शोक-मोह में ग्रसित हूँ—अतएव मेरी आप ही रक्षा करो ॥३॥

[४]

नित्यं कामः किमपि कुरुते दुसहां मर्मपीड़ा –
मान्ध्यं क्रोधः किमपि कुरुते क्षोभयेल्लोभः उच्चैः ।
दम्भासूया-मद-पिशुनता-मत्सराद्यैः सुपूर्णः
स्वार्थाद्भ्रष्टस्तदिह शरणं यामि वृन्दावन ! त्वाम्॥

हे श्रीवृन्दावन ! काम, कैसी कैसी असह मर्म-पीड़ा नित्य देता है ; क्रोध, कितना अन्धा कर देता है, लोभ भी अत्यन्त क्षुभित करता है, और दम्भ, असूया, मद, पिशुनता, मात्सर्य आदि से लिप्त मैं स्वार्थ से भ्रष्ट हुआ अब आपकी ही शरण लेता हूँ ॥४॥

[५]

भो भो धन्य शिरोमणे ! भगवतः पादाम्बुजैकान्तिक –
प्रेम्णश्चेत् परम रहस्यमतिदुष्प्राप्यं च संप्रेप्स्यसि ।
तत्त्वं नित्यविहारमन्दिरमिदं श्रीराधिकाकृष्णयो –
राद्य-स्वाद्यरसात्मकाखिलसमृद्ध्याऽध्यास्स्व वृन्दावनम् ॥

हे धन्य शिरोमणे ! यदि भगवत् चरण-कमलों के एकान्तिक प्रेम के अति दुर्लभ परम रहस्य को सम्यक् रूप से प्राप्त करने की तुझे इच्छा है, तो तुम आद्य आस्वाद्य-रसात्मक अखिल भावों से पूर्ण श्रीराधाकृष्ण के नित्य-विहार मन्दिर इस श्रीवृन्दावन में वास कर ।।५।।

[६]

भोगेच्छा यदि सर्वभोगमिह किं भुङ्क्षे न सर्वोत्तमं
मोक्षेच्छा यदि सर्वसाधनगणक्लेशं विनैवात्र हिं ।
भक्तिं चेद् भगवत्यभीप्स्यसि परां तस्या रहस्यं परं
त्वत्रैवेत्यवधार्य्य सर्वजनतो वृन्दावनं सेव्यताम् ॥

यदि भोग की इच्छा है, तो यहाँ क्या सर्वोत्तम सकल भोग तू नहीं भोग सकता ? यदि मोक्ष की इच्छा है, तो समस्त साधनों के क्लेश के बिना ही वह तुम्हें प्राप्त हो सकता है। यदि श्रीभगवान् की परम भक्ति चाहता है, तो उसका भी परम रहस्य यहाँ तुम्हें प्राप्त हो जायेगा । यह समस्त तत्त्व सब लोकों से अवधारण करके श्रीवृन्दावन का ही सेवन कर ।।६।।

[७]

त्रैगुण्यात् परमुज्ज्वलं भगवतो धामास्ति विद्यामयं
तत्रात्युज्ज्वलमुल्लसत्यति-महाश्चर्यश्रि वृन्दावनम् ।
तत्रानङ्गरसोन्मदं निशिदिवा दिव्यं किशोरद्वयं
गौरश्याममतीवकान्तमधुरं क्रीड़त् कदा लालये ॥

त्रिगुण के पार विद्यामय भगवत् धाम है, उसमें अति महाश्चर्य शोभा समृद्धियुक्त अति उज्ज्वल श्रीवृन्दावन प्रकाशित हो रहा है, वहाँ रात-दिन काम-रसोन्मत्त दिव्य और गौरश्यामवर्ण युगलकिशोर अतिशय कान्त-रसमयी मधुर क्रीड़ा करते हैं—मैं उनकी सेवा कब प्राप्त कर सकूंगा ? ॥७॥

[८]

अङ्गेऽङ्गेऽनन्तपाराः किरदति-मधुराश्चर्यलावण्यवण्या
गौरश्यामाभिरामाः स्मरविकृतिचमत्कारकोटीश्चविभ्रत् ।
नित्याश्चर्यं किशोरद्वयमुरुपुलकं यद्रसाविष्टमुच्चैः
कुञ्जे कुञ्जे विहारि स्मर हृदय सदा श्रीलवृन्दावनं तत् ॥

गौरश्याम-वर्णमय अति रमणीय अङ्गयुक्त एक अति मधुर लावण्यता की अनन्त असीम छटा विकीर्ण करते हुए काम-विकार वश कोटि-कोटि चमत्कृति धारण करके पुलकित शरीर तथा रसाविष्ट चित्त से नित्याश्चर्यमय श्रीयुगलकिशोर जिसके कुञ्जों कुञ्जों में विहार करते हैं, हे हृदय ! सदा उस श्रीवृन्दावन का स्मरण कर ॥८॥

[९]

ऐश्वर्यं परमञ्च वेत्ति न मनाङ् नान्यञ्च कञ्चिद्रसं
न स्थाने परतः कदा त्वनुगतं नो वा कुतोऽप्यागतम्।
कैशोरादपरं वयो न हि कदाप्यासादयन्न क्षणं
क्रीड़ातो विरतं तदेकमिथुनं वृन्दावने नन्दति ॥

परम ऐश्वर्य को विन्दुमात्र भी नहीं जानती, अन्य किसी रस से परिचित नहीं, अन्यत्र कहीं जाती नहीं—आती नहीं, किशोर अवस्था के बिना और अवस्था नहीं तथा एक क्षण भी बिना

क्रीड़ा के नहीं रह सकती, ऐसी एक अनिर्वचनीय जोड़ी श्रीवृन्दावन में आनन्द ले रही है ॥९॥

[१०]

प्रेमानन्दरसातिविह्वलतमे नानाचमत्कारभृद्
दिव्यानेकमणिस्थले बहुलसद्वल्ली-द्रु-गुल्मादिके ।
दिव्यैः पक्षिमृगैः सरोवरसरिच्छैलादिभिश्चाद्भुते
श्रीवृन्दाविपिने कदानु ललितैकात्म्यं किशोरं भजे ॥

हाय ! प्रेमानन्दरस में अति विह्वलतम, नाना चमत्कारशील दिव्य दिव्य मणिमय स्थलों से शोभित, उत्तमोत्तम अनेक गुल्म-द्रुमादि से भूषित, दिव्य पक्षि-मृगों से संव्याप्त, सरोवर, नदी, पर्वतादिकों से पूर्ण अद्भुत श्रीवृन्दावन में कब मैं अति ललित-एकात्म श्री युगलकिशोर का भजन करूंगा ? ॥१०॥

[११]

राधाकृष्णौ परमकुतुकात् खेलतो यत्तलेषु
भुञ्जाते यत्फलमतिरसं यत्प्रसूनादिभूषौ ।
यच्छाखास्थैः सुरुचिरखगैर्मौनिभिर्निर्निमेषैः
पीताऽऽलापामृतरुचिसुधौ तांस्तरूंश्चिन्तयामि ॥

जिन समस्त वृक्षों के नीचे श्रीराधाकृष्ण परम कौतुकवशतः क्रीड़ा करते हैं, जिनके अति रसाल-फल भोजन करते हैं, जिनके पुष्पों के भूषणादि धारण करते हैं, जिनकी शाखाओं पर बैठे हुए मौनी मनोज्ञ पक्षीगणों द्वारा किए आलापामृत एवं लावण्यामृत का पान करते हैं, मैं (श्रीवृन्दावन के) उन वृक्षों का ध्यान करता हूँ॥११

[१२]

नानाकारान् दिव्यनानाफलादीन्
राधाकृष्णप्रीतये ये वहन्ति ।

नानासंस्थानोद्भवान्तर्द्धिभाजो
वन्दे वृन्दारण्यधन्यद्रुमांस्तान् ॥

नाना आकृतिवाले नाना प्रकार के दिव्य दिव्य फलों को जो श्रीराधाकृष्ण की प्रीति के लिए धारण करते हैं, एवं जो नाना प्रकार के भावों में सन्निविष्ट होकर आविर्भाव एवं तिरोभाव करते हैं, श्रीवृन्दावन के उन धन्य तरुओं को मैं नमस्कार करता हूँ॥१२॥

[१३]

राधाकृष्णानुरागान्मुकुलपुलकिनो माकरन्दौघवाष्पान्
तत्तादृग् वातचञ्चत् किशलयकरतो दिव्यनृत्यं दधानाः ।
सत्पुष्पश्रेणिहासाः खगकुलविरुतैः संस्तुवन्तः फलादे-
र्भारैर्नम्रा द्रुमास्ते मम परममुदे सन्तु वृन्दावनीयाः ॥

श्रीराधाकृष्ण के प्रति अनुरागवश वे (वृक्ष) मुकुलरूप से पुलकित हो रहे हैं, मकरन्द प्रवाह के मिस वे अश्रु बहा रहे हैं, मृदुमन्द वायु-प्रवाह से डोलायमान पल्लवों से मानो वे हस्त-भङ्गी द्वारा दिव्य-नृत्य कर रहे हैं। उत्तम पुष्प-विकास छल से हँस रहे हैं, पक्षी-गणों की कोलाहल ध्वनिरूप से सम्यक प्रकार से वे स्तव गान कर रहे हैं, फलादि के भार से झुके हुए वे श्रीवृन्दावन के वृक्षराज मेरे लिए परमानन्द प्रदान करें ॥१३॥

[१४]

ये द्राघिष्ठाऽतिह्रस्वा अतिघनविरलाश्छायया शीतलोष्मा
निःश्वभ्राः कोटराढ्या अतिशिशुतरुणास्तानवाढ्याः स्थविष्ठाः
श्रीराधाकृष्णयोः कामपि रसलहरीं सन्ततं वर्द्धयन्तः ॥
शाखीन्द्रास्ते तदिच्छामयतनुविभवा भान्ति वृन्दावनीयाः ॥

श्रीवृन्दावन के श्रेष्ठ वृक्ष श्रीराधाकृष्ण की इच्छानुकूल विग्रह-वैभव धारण कर श्रीयुगलकिशोर की अनिर्वचनीय रस-लहरी की

निरन्तर वृद्धि करते हुए प्रकाशित हो रहे हैं—कभी तो वे अति दीर्घ और कभी वे अति लघुरूप धारण कर लेते हैं। अति घने हैं एवं छाया में शीतलता और ऊष्णता मिली रहती हैं, छिद्र-हीन होते हुए भी बड़े कोटरवाले हैं। अत्यन्त छोटे होते हुए भी तरुण हो जाते हैं एवं सूक्ष्म होकर भी समय विशेष पर अति स्थूल हो जाते हैं ॥१४॥

[१५]

एकान्तेषु विचिन्तयन्निरवधि श्रीराधिकाकृष्णयो –
स्तद्रूपं सकलाद्भुतं रसमयीर्लीलाश्च सर्वाद्भुताः।
प्राप्तैकान्तनिरन्तरोज्ज्वलमहाभावो महाभाग्यतः
सर्वेहा-विनिवृति-नित्यसुखभाक् कोऽप्यस्ति वृन्दावने ॥

श्रीराधाकृष्ण के सर्वाद्भुत रूप-माधुर्य एवं सर्वाद्भुत रसमयी लीला का एकान्त स्थान में निरन्तर चिन्तन करते करते, महा भाग्यवश निरन्तर उज्ज्वल-रस की महाभावाख्य श्रेष्ठ-दशा को प्राप्त होकर, सर्व चेष्टाओं से विरत एवं सुखी होकर कोई भाग्यवान व्यक्ति ही श्रीवृन्दावन में वास करता है ॥१५॥

[१६]

अन्नं मिष्टमिव क्षुधाऽतिविकलस्याम्भो यथा शीतलं
संक्लिष्टस्य पिपासया हिमह्रदस्तप्तस्य घर्मैरपि।
रङ्कस्येव महानिधिः परमिव ब्रह्मामृतं योगिनां
भूतानामिव जीवनं भवतु मे वृन्दावनं पावनम् ॥

मेरे लिए यह पवित्र श्रीवृन्दावन—क्षुधातुर व्यक्ति के लिए सुन्दर मधुर अन्न के समान,प्यासे व्यक्ति के लिए सुशीतल जलवत्, धूप से तप्त पुरुष के लिए शीतल सरोवर के सदृश, अति दरिद्र के लिए महाधनराशि के तुल्य, योगियों के लिए परम ब्रह्मामृतवत्,

एवं निखिल प्राणियों के लिए जीवनतुल्य परम प्रियतम हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥१६॥

[१७]

वाञ्छातीत-महाफलानि दिशतः स्वोदारतावेशतो
दिव्यानल्पमहीरुहानगणितानत्यल्पकान् कुर्वतः ।
स्वानन्दामृत-शुद्ध चिद्रसघनान् कृष्णानुरागाप्लुतान्
वन्देऽद्वन्द्वमुनीन्द्रवृन्दविनुतान् वृन्दाटवीशाखिनः ॥

अपनी उदारता से वाञ्छित फलों को प्रदान करने वाले, एवं अगणित दिव्य दिव्य महावृक्षों को भी अति तुच्छ करने वाले, स्वानन्दामृत शुद्ध चिद्रसघन स्वरूप कृष्णानुराग से प्लावित तथा द्वन्दातीत श्रेष्ठ मुनिगणों से भी अभिवन्दित—इन श्रीवृन्दावन के वृक्षराजों की मैं वन्दना करता हूँ ॥१७॥

[१८]

स्वयं नित्योत्तीर्णांस्त्रिगुणविभवापारजलधेः
परानप्युत्तार्योन्मदहरिरसाब्ध्याप्लुतिकृतः ।
महार्थान् योगीन्द्रैरपि दुरुपलम्भान् वितरतो
भजानन्यप्रेम्णा दयिततम-वृन्दावनतरून् ॥

जो स्वयं नित्य त्रिगुणमयी माया की विभूति के अपार समुद्र से पार उतरे हुए हैं एवं और सबको उसके पार करके उन्मादनकारी हरि-रस-समुद्र में स्नान करा देते हैं, योगीन्द्रगणों के लिए भी जो दुर्लभ महापुरुषार्थ हैं—उनको जो वितरण कर रहे हैं—ऐसे प्रियतम श्रीवृन्दावन के वृक्षों का अनन्य प्रेम से भजन कर ॥१८॥

[१९]

ज्योतिः पूरैर्विचित्रैः परमसुविमलैः पूरयन्तोऽखिलाशाः
माध्वीकासारवर्षैः सुसुरभिमधुरैर्मादयन्तो जगन्ति ।

चित्रैः पुष्पैः प्रवालैरसमयसुफलैर्गुच्छकैर्जालकैश्च
श्रीवृन्दाकाननेऽस्मिन् विदधति परमानन्दवृन्दंद्रुमेन्द्राः ॥

जो अपने परम सुविमल विचित्र ज्योति-प्रवाह से दशोंदिशाओं को आलोकित कर रहे हैं एवं अति सुगन्धित मधुर उत्कृष्ट मकरन्द-धारा बरसा कर चौदह भुवनों को उन्मत्त कर रहे हैं; वे श्रीवृन्दावन के वृक्षराज विचित्र पुष्प-पल्लव रसमय सुन्दर फल-स्तवक और अस्फुट कलिकाओं द्वारा परमानन्द राशि प्रदान कर रहे हैं ॥१६॥

[२०]

आयान्तौ वीक्ष्य ये स्वयं तलमतिरसिकौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ
चन्द्रौघैर्दिव्यदिव्यैरपि किमपि न संस्पृष्ट वक्त्रेन्दुकान्ति ।
सद्यः सन्त्यज्य सत्पल्लवकुसुमचयं तल्पकं कल्पयन्ति
श्रीवृन्दारण्य धन्यद्रुमतनु-भगवत्पार्षदांस्तान् भजन्तु ॥

दिव्यातिदिव्य चन्द्र-समूह जिनकी मुखचन्द्र-कान्ति का किसी प्रकार स्पर्श भी नहीं कर पाते, ऐसे श्रीराधिकाकृष्णचन्द्र-नामक अति रसिक-युगलकिशोर को अपने नीचे आया देख कर जो श्रीवृन्दावनवासी धन्य वृक्ष-शरीरधारी भगवत्-पार्षदगण सदा उत्तमोत्तम पल्लव और कुसुमों की वर्षा कर शय्या की रचना करते हैं—उनका भजन कीजिए ॥२०॥

[२१]

येषां छायासु शीतास्वति मधुरसुधा श्रीकरासारवर्षै –
र्मूले संसिक्तगात्रौ यदुमितकुसुमाद्यास्तरेषूपविष्टौ ।
श्रीराधाकृष्णचन्द्रौ यदुपहृत महास्वादिम-श्रीफलानि
स्वादेते संस्तुवन्तौ मिथ ऊरुरसदौनौमि वृन्दावनद्रून् ॥

जिनके नीचे शीतल छाया में कुसमादि-रचित आसन पर

उपविष्ट श्रीराधाकृष्ण अति मधुर सुधा-बिन्दु-धाराओं से भीजते हैं,अनन्त रसदानकारी युगलकिशोर जिनसे गिरे हुए महा-स्वादिष्ट फलोंको परस्पर प्रशंसा करते-करते भोजन करते हैं, श्रीवृन्दावन के उन वृक्षों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

[२२]

अनन्तामोदाढ्यैर्विविध रुचिरानन्तकुसमै-
रनन्तैरानन्दद्रवमय मंरन्दौघनिवहैः ।
अनन्तैः श्रीशाखाभरित फलगुच्छैः किशलयै-
रनन्तान् श्रीवृन्दावनवरतरुंश्चिन्तय मनः ॥

हे मन ! अनन्त सुगंधिपूर्ण, नाना प्रकार के अनन्त रुचिर कुसुमों से शोभित, अनन्त आनन्द-द्रवमय मकरन्द-प्रवाह से युक्त अनन्त सुन्दर फलगुच्छ सम्वलित, अनन्तशाखा-पल्लवयुक्त श्रीवृन्दावन के अनन्त तरु-समूह का ध्यान धरो ॥२२॥

[२३]

अस्ति स्वस्तिकरूपिणी क्वचिदहो कुत्रापि चक्राकृति -
वृत्ता क्वापि तथायता क्वचिदथोह्रस्वाथ चन्द्रार्द्धवत् ।
क्वाप्याभाति चतुष्ककङ्कणकला रासायरत्नोज्ज्वला
क्वाप्यल्पोच्च विचित्रमण्डनकला वृन्दावनीयावनी ॥

श्रीवृन्दावन की भूमि कहीं स्वस्तिकरूपिणी है एवं कहीं चक्राकृति है, कहीं वर्त्तुलाकार है तो कहीं छोटी है, अन्यत्र अर्ध-चन्द्राकार है, कहीं रासलीला के उपयोगी रत्नमयी उज्ज्वल चतुष्क-आकृति व गोलाकार एवं अति सूक्ष्म है; और कहीं थोड़ी ऊंची विस्तृत मण्डनकला विद्या-प्रकाश से शोभित हो रही है ॥२३॥

[२४]

सौपानैर्मणिनिर्मितैः सुरुचिरा वैचित्र्यकोटयोज्ज्वलै -
र्वद्धारत्नचयैः सुतुङ्गसुभगा संशोभितानूपरि ।

रत्नस्वर्णमयद्रुवल्लिनिवहैः   शाखादिगुच्छादिभिः
श्रीमन्मण्डपरूपितान्तरयुता भूर्भातिवृन्दावने ॥

मणिमय सीढ़ियों से अति शोभित, अनेक प्रकार के विचित्र कोटि कोटि उज्ज्वल रत्नों से बद्ध, अति ऊंची अति सुन्दर एवं ऊपर के भाग में अति सुशोभित है, रत्न एवं स्वर्णमय वृक्षलताओं के गुच्छों द्वारा जगह जगह परम रमणीय मण्डप-रूप धारण कर श्रीवृन्दावन की भूमि शोभायमान हो रही है ॥२४॥

[२५]

न्यस्योत्सङ्गे पुलकितवपुः प्रेयसीं वेशयित्वा
वारं वारं स्वयमतिकृतश्लाघनो हासयस्ताम् ।
मध्ये मध्ये तरलतरलोऽनङ्गचेष्टा वितन्वन्
वृन्दारण्ये सुखयतु सदा राधिका-कामको नः ॥

प्रेयसी का वेश विन्यास कर उसे अपने क्रोड़देश में बिठा कर जो पुलकायमान हो रहे हैं, एवं बारबार अनेक प्रशंसा करके उसे हंसा रहे हैं, और पुनः पुनः अतिशय चञ्चल होकर विविध काम चेष्टाएं विस्तार करनेवाले श्रीराधालम्पट श्रीकृष्ण हमें सदा सुख प्रदान करें ॥२५॥

[२६]

चिज्ज्योतिर्मयभूमि चिन्मयलतावल्लिद्रुमं चिद्घन-
स्फुर्जत्पक्षिमृगं   चिदेकरसवार्यापूर्णफुल्लत्सरः ।
चिद्रूपाद्रि-नदी-तड़ाग-मणि-धात्वम्भोधरस्तुस्फुर--
न्नाना-मन्जु-निकुञ्ज पुञ्जमिह चिद्धामेव वृन्दावनम् ॥

इस श्रीवृन्दावन की भूमि चित् ज्योतिर्मय है, लता-वल्लरी-वृक्षादि भी चिन्मय हैं; पक्षी-मृगादि भी सब चिद्घन हैं; प्रफुल्लित कुसुममय सरोवर भी चिदेकरस जल से पूर्ण हैं; पर्वत-

नदी-तड़ाग मणि-धातु और मेघादि सब चिन्मय हैं; इस तरह अनेक मनोहर निकुञ्जों से संयुक्त यह श्रीवृन्दावनधाम चिन्मय ही है ।।२६

[२७]

नानाशक्तिः प्रकटयति योऽचिन्त्य-नानात्तनूभि –
र्धत्ते ताश्च स्वयमपि कदाऽप्यत्यमर्यादरूपाः ।
नानावस्था दधदुरुविधान् योऽभिवर्षेद्रसौघां –
स्तं श्रीराधारसवशमहं नौमि वृन्दावनेन्दुम् ॥

श्रीराधा-रसवशवर्त्ती श्रीवृन्दावनचन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ—जो अनेक अचिन्त्य मूर्त्ति धारण कर नाना विधि शक्ति प्रकट करते हैं एवं जो कभी अपने आप भी अपरिसीम रूप-माधुरी विस्तार कर अपने भावों में भावित होकर बहुविधि रस-धारा बरसाते हैं ।।२७।।

[२८]

अङ्के पङ्केरुहवरमुखीं नित्यमेव स्फुरन्तीं–
प्रेमार्द्रात्मा पुलकिततनुर्लालयन् हृष्टरोमा ।
कुर्वन् काञ्चिन्नवनवरतिं भिक्षितुं चित्रगोष्ठीं
वृन्दारण्यव्रततिनिलये भाति राधाविलासी ॥

नित्य ही सुन्दरी श्रेष्ठ-कमलमुखी श्रीराधा को क्रोड़देश में रख कर प्रेमार्द्रचित्त से पुलकित होकर श्रीहरि लालन करते हैं एवं किसी अनिर्वचनीय नव नवायमान रति की भिक्षा करते हुए विचित्र संलाप रचना करते हैं, वही श्रीराधाविलासी श्रीश्यामसुन्दर श्रीवृन्दावन के लतागृह में शोभित हो रहे हैं ।।२८।।

[२९]

ये वृन्दावनमावसन्ति यदि वा स्पृष्ट्वाऽथ दृष्ट्वा गता
ध्यायन्ति प्रणमन्ति तद्गुणगणान् गायन्ति शृण्वन्ति वा ॥

मूर्ध्ना विभ्रति तद्रजः क्वचन तत्सम्बन्धसम्बन्धिन –
स्तानप्युन्नयते परं पदमहो वृन्दावनं पावनम् ॥

अहो ! श्रीवृन्दावन-वासियों के दर्शन कर या उनका स्पर्श कर अन्यत्र जाकर जो पुरुष उनका ध्यान या उनको प्रणाम करते हैं, तथा उनके गुणों का कीर्त्तन व श्रवण करते हैं, अथवा उनकी पद-धूलि को मस्तक पर धारण करते हैं, अथवा जो पुरुष किसी भांति भी श्रीवृन्दावन की सम्बन्धित-वस्तु से सम्बन्धित हैं—उन्हें पावन श्रीवृन्दावन परमपद प्रदान करता है ॥२६॥

[३०]

महाश्चर्यां रीतिं दृशि वचसि गत्यादिषु दध –
न्महाप्रेमावेशोन्मद मदनवैवश्य मधुरम् ।
अहो यत्रैवानन्दति सहजकैशोरकमहो –
द्वयं गौरश्यामं तदुदयति वृन्दावनमिदम् ॥

नयन-वाक्य एवं गति में महाश्चर्य रीति धारण करके तथा महाप्रेमावेश में उन्मत्त मदन के वशीभूत होकर मधुर मूर्त्ति धारण करके—हाय ! सहज-किशोर गौरश्यामयुगल जहां आनन्द उठा रहे हैं—वह यही श्रीवृन्दावन है ॥३०॥

[३१]

विचिन्वन्तं नीलानलकनिकरांश्चारुकरजै –
र्विजिघ्रन्तं फुल्लद्वदनकनकाम्भोजमसकृत् ।
विचुम्बन्तं बिम्बाधरमसकृदुन्नम्य चिबुकं
निधायाङ्के राधां स्मर मदनमूर्त्तिं मधुपतिम् ॥

सुन्दर अंगुलियों से नील अलकावलि सुविन्यस्त करते हैं, स्वर्ण-कमल के समान प्रफुल्ल वदन को बार-बार आघ्राण करते हैं, श्रीराधा को अङ्क में बैठाकर चिबुक ऊंचा उठा कर पुनः पुनः

उसके बिम्बाधर को चुम्बन करते हैं, ऐसे जो मदनमूर्त्ति मधुपति हैं—उनका स्मरण कर ॥३१॥

[३२]

अहो गौरश्यामे मधुर मधुरे दिव्यमहसी
किशोरे सर्वाङ्गोत्थित मदनबाधाऽर्तिविवशे ।
रतिक्रीड़ाम्भोधावतिविहरति पाररहिते
सुभावैः श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्जेषु भजत ॥

अहो ! मधुरातिमधुर दिव्य गौरश्याम युगलकिशोर सर्वाङ्गों में उत्थित मदन-पीड़ायुक्त होकर अवश हो, असीम अपार रति-क्रीड़ा-सागर में अतिशय विहार करते हैं—श्रीवृन्दावन के नव-निकुञ्जों में स्थित इन युगलकिशोर का उज्ज्वलभाव से तुम भजन करो ॥३२॥

[३३]

सख्यग्रेऽति रुषा निरस्य रमणं सङ्केतकुञ्जं प्रति
प्रोच्य प्रोषितमालिवृन्दमपि वाक्चातुर्यतोऽपास्य तत् ।
यान्तीं मन्मथपीड़ितां रसयुतां राधामनु प्रस्थितां
भृङ्गारव्यजनादिना कुरु मनस्येकां रहःकिङ्करीम् ॥

सखियों के सामने नागरमणि (श्रीकृष्ण) को अति क्रोध से निरसन करके और सङ्केतकुञ्ज के प्रति जाने का इशारा देकर तथा इस ओर प्रस्थित सखियों को वाक्‌चातुरी से समझाकर उन्हें वहीं छोड़कर, मन्मथ पीड़िता रसमयी श्रीराधा उनके पास जारही हैं, उनके पीछे-पीछे एकान्त में एक दासी भृङ्गार व्यजनादि लेकर साथ चल रही है, इस लीला का मन-मन में चिन्तन कर ॥३३॥

[३४]

गलद्वरपटं त्रुटत्स्रगुरुहारकाञ्चीगुणं
श्लथच्चिकुरबन्धनं तिलक-कज्जलादित्रयम् ।

सदावहितकिङ्करीनिकर सर्वसम्पादकं
स्मर स्मरविचेतनं द्विपरधाम वृन्दावने ॥

सब सुन्दर वस्त्र खिसल पड़ते हैं, माला-हार काञ्चीदामादि भी टूट पड़ती हैं, केशबन्धन ढीले हो जाते हैं, तिलक एवं कज्जलादि का चिन्ह मात्र भी नहीं रहता, किन्तु नित्य अवहित चित्त से सखी-वृन्द सब व्यवस्था कर देती हैं, श्रीवृन्दावन में इसप्रकार काम-विवश परमविग्रह युगलकिशोर का स्मरण कर ॥३४॥

[३५]

श्रीमद्वृन्दावनभुवि महानन्दसाम्राज्यकन्दे
वन्दे यं कञ्चनविरचितामृत्युवासप्रतिज्ञम् ।
श्रीगान्धर्वारसिकतिलकौ स्वेषु योऽग्यं यमेकं-
ज्ञात्वान्योन्यं विमृशत इदं कीदृशोऽस्वेष भाव्यः ॥

महानन्द साम्राज्य के मूल श्रीवृन्दावन की भूमि पर जो मृत्यु-पर्य्यन्त वास करने की प्रतिज्ञा कर चुका है, उस किसी महापुरुष की मैं वन्दना करता हूँ ; क्योंकि श्रीराधा जी एवं रसिकचूड़ामणि श्रीकृष्ण अपने सेवकों में उसे अन्यतम जानकर "वह कैसा है ?" इस विषय पर परस्पर परामर्श करते हैं ॥३५॥

[३६]

चन्द्राणां कोटिकोटेरुदयमिव नयन्नर्म्महासच्छटाभि-
र्भ्रुचोपाद्यैर्विचित्राः सृजदिव परमाश्चर्य कन्दर्पकोटिः ।
मन्त्राचोपादिवाण्या स्रवदिव शिशरानन्द-माधुर्य्यकोटि
राधाकृष्णाभिधानं भजत तदुभयंधाम वृन्दावनान्तः॥

जिनकी मन्दमुस्कान की छटा में कोटि-कोटि चन्द्रों का उदय होता है, भृकुटि कटाक्षादिसे विचित्र परमाश्चर्यजनक कोटि-कोटि कामदेव उत्पन्न होते हैं; जिनके मन्त्रणा एवं आक्षेपवाक्यों

द्वारा शीतलानन्द माधुर्य्यधारा का प्रवाह होता है। ऐसे श्रीवृन्दावन विहारी श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोर का भजन कर ॥३६॥

[३७]

वृन्दावनं परमपावनमप्रमेय–
माधुर्य्यमुज्ज्वलचिदेकरसात्मभावम् ।
श्रीराधिकामदनमोहन-केलिकुञ्ज–
पुञ्जैः सुरञ्जितसुमञ्जु चिरं जपामि ॥

परम पावन, असीम माधुर्य्य मण्डित, उज्ज्वल चिन्मय रस-घन मूर्त्ति श्रीराधिका मदनमोहन के केलि कुञ्जसमूह से सुरञ्जित एवं सुमनोहर "श्रीवृन्दावन" नाम का मैं चिरकाल तक जप करता हूँ ॥३७॥

[३८]

राधां नित्यं परिचर हरिप्रेमसारैरगाधां –
बाधां सर्वां स्मर न हि तनुं चापराधान्नरक्ष ।
मा याह्यार्त्तः क्वचिदपि विना धामराधारसान्धं
मा धावाज्ञ ! क्वचिदसुलभं धाम वृन्दावनं हि ॥

श्रीहरि के प्रेमसार से अति गम्भीर श्रीराधा की नित्य परिचर्या कर, बाधाओं की कुछ चिन्ता न कर, शरीर की अपराधों से भी रक्षा मत कर, आर्त्त होकर भी श्रीराधा-रसोन्मत्त श्रीवृन्दावनधाम को त्याग करके कहीं मत जा। हे अज्ञ ! कहीं मत दौड़, क्योंकि श्रीवृन्दावनधाम अति दुर्ल्लभ है ॥३८॥

[३९]

अक्षैः कुत्रापि खेलत् क्वचन निलयनैः कुत्रचिच्चोरिकाभि–
र्वल्लीवृक्षानुकृत्यां क्वचन ननु मिथः क्वापि हिन्दोलनेन ।
क्वाप्याश्चर्यप्रहेल्या क्वन खगमृगादीहितैः क्वेन्द्रजालै–
र्वृन्दारण्येऽतिदिव्यं किमपि विजयते गौरनीलं द्विधाम ॥

कहीं चौसरादि खेलते हैं, कहीं दौड़ा-दौड़ी खेलते हैं, कहीं फिर चोरी-चोरी खेलते हैं, कहीं लतावृक्षादि का अनुकरण करते हैं एवं अन्यत्र परस्पर हिंडोला झूलते हैं, एक स्थल पर आश्चर्य पहेलिका द्वारा और दूसरे स्थल पर पशु-पक्षियों की चेष्टा द्वारा और फिर कहीं अन्य स्थान पर इन्द्रजालादि का खेल खेलते हुए अति दिव्य गौरनील युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में उत्कर्ष को प्राप्त हो रहे हैं ॥३६

[४०]

सुखवपुरवताराः सन्ति शौरे कियन्तुः
कति कति विजयन्ते मूर्त्तयो नातिदिव्याः ।
न च रुचिरतमाः काः सन्ति साक्षादवस्था
स्तदपि मधुर एको राधिका-नागरो मे ॥

श्रीहरि के अनेक आनन्दमूर्त्ति-अवतार हैं और कितनी-कितनी दिव्य मूर्त्तियाँ यहाँ से विजय भी कर चुकी हैं। रुचिरतम साक्षद्-वस्तु के समान-स्वरूपधारी अनेक विग्रह विराजमान भी हैं; किन्तु एकमात्र श्रीराधानागर ही मुझे अति मधुर लगते हैं ॥४०॥

[४१]

राधा वृन्दावनाख्ये वने इति परमो भाति घोषः पुराणे
तेनास्या न व्रजेऽपि प्रकटमतिमहाश्चर्य्यं पूर्णस्वरूपम् ।
अस्याः प्रेमासमोर्ध्वः स हि परपुरुषः सर्वभावेन सिद्ध–
स्तस्माद्राधेत्यभिख्या तदतिवशहरिं पश्य वृन्दावनेन्दुम् ॥

पुराणों में यह घोषणा है कि श्रीराधा श्रीवृन्दावन नामक वन में अतिशय शोभायुक्त विराजमान हैं। श्रीराधा के अति महाश्चर्य-पूर्ण स्वरूपको व्रजमें भी प्रकट नहीं किया गया है। श्रीराधाका कृष्ण-प्रेम असमोर्द्ध है; और वे श्रीकृष्ण ही परम पुरुष हैं; इसलिये इनका 'राधा' नाम सर्वभाव से सार्थक हुआ है, इनके अति वश-वर्त्ती वृन्दावनचन्द्र श्रीहरि के तू दर्शन कर ॥४१॥

[४२]

सर्वः प्रेमशिरोमणेः परचमत्कारः समुज्जृम्भते
राधायां परमुन्नतिमधुपतेस्तामन्वशेषश्रियाम् ।
सा वृन्दावन एव सम्यगुदिता पूर्णैकमाधुर्यभू –
स्तद्भावेनपरेण चिन्तय मनस्त्वान्तं तदत्युज्ज्वलम् ॥

प्रेम शिरोमणि का परम–चमत्कार सर्वत्र सम्यक् प्रकाशित होता है, फिर भी श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधा के निकट जब रहते हैं, तब अशेष सौन्दर्यशालिनी श्रीराधा में इसका प्रकाश अति अधिक उदित होता है ; वह परिपूर्ण माधुर्यखानि श्रीराधा भी श्रीवृन्दावन में ही सम्यकरूप से प्रकाशित हो रही हैं, हे मन ! पराकाष्ठा-प्राप्त उस अति उज्ज्वल-रस की तद्भावभावित चित्त से चिन्ता कर ॥४२

[४३]

श्रीमद्वृन्दावनश्रीर्मम हृदि सकृदप्यस्तु सर्वेश्वराणां
सर्वानन्दातिसारं किमपि रसयतामप्यहो मोहदात्री ।
साऽत्याश्चर्यं हरेः श्रीप्रकृतिरथकृतिर्भातु मे वार्षभान –
व्येकाङ्घ्रि-श्रीनखेन्दुच्छबिमधुरिमणि स्वान्तविश्रान्तिरस्तु ॥

अहो ! अनिर्वचनीय सर्वानन्दातिसार के रस को आस्वादन करने वाले सर्वेश्वरों को भी मोहित करनेवाली श्रीमद्वृन्दावन की शोभा एकवार भी मेरे हृदय में उदित हो। वह अति आश्चर्यमय श्रीहरि की शोभा-सम्पत्तिशालिनी प्रकृति भी कृति विशेष है–वह मेरे हृदय में प्रतिभात हो। अहो ! श्रीवृषभानुनन्दनी के चरणों के श्रीनखचन्द्र के कान्ति माधुर्य में मुझे पूर्ण विश्राम प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥४३॥

[४४]

एकैकाङ्गच्छटाभिर्भरितदशदिशो गौरनीलोज्ज्वलाभि–
र्नित्ये कैशोर एवाद्भुतवयसि सतो नित्यकामार्दितस्य ।

अत्याश्चर्य्यैरनन्तैर्नवमदनकलाकौतुकैरात्र्यहानि
श्रीवृन्दारण्यकुञ्जे नयत उरुरतिं विन्द तदयुग्मधाम्नः ॥

श्रीगौरश्याम प्रत्येक अङ्ग-छटा से दशोंदिशाओं को पूर्ण कर रहे हैं। नित्य अद्भुत किशोरअवस्था युक्त हैं, नित्य कामपरायण हैं; अति आश्चर्यमय अनन्त नवकाम-कला-कौतुक में ही वे श्रीवृन्दावन में दिन-रात यापन करते हैं। अतः उन श्रीयुगलकिशोर का प्रचुर प्रेम प्राप्त कर ॥४४॥

[४५]

नित्यं पीड़यतोऽपि नैव मनसाऽप्यापीड़यन् यद् गतान्
जन्तून् भक्तिभरान्नमंश्च सततं शक्त्या प्रियैः पूरयन् ।
लाभालाभ-जयाजयोन्नति विपन्मानापमानादिके
तुल्यः कृष्णनिविष्टधीरधिवसन् वृन्दावनं वन्द्यताम् ॥

श्रीवृन्दावन-धामवासी जीव-समूह यदि नित्य पीड़ा दें, तो भी उनको मन से भी पीड़ा न देकर, किन्तु भक्तिपूर्वक निरन्तर उनको नमस्कार करते हुए, शक्ति अनुसार प्रियवस्तु दान कर उनके अभाव को पूर्ण कर, जो पुरुष—श्रीकृष्ण में चित्त लगाकर लाभ-अलाभ में, जय-अजय में, उन्नति-अवनति एवं मान-अपमान में समबुद्धि रह कर श्रीवृन्दावन में वास करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४५॥

[४६]

दुर्वाच्यानि सहस्रशः परिभवान्नीचैः कृतान् कोटिशो—
भक्ष्याच्छादनवास कुटचमिलनाद् दुखान्यलं कोटिशः ।
कामाद्यै रतिपीड़या च मन सो वैकल्य मात्यन्तिकं
ये सोढ्वाऽपि वसन्ति केलिविपिने कृष्णस्य तेभ्यो नमः॥

सहस्र सहस्र दुर्वचन, नीच द्वारा कोटि-कोटि निन्दा, भोजन,

वस्त्र एवं रहने के लिये स्थान घरादि की अप्राप्ति में कोटि प्रकार के दुःखों को एवं कामादि की भारी पीड़ावश अति अधिक मानसिक विकलता को सहन करते हुए जो श्रीकृष्ण की विलासभूमि–श्रीवृन्दा. वन में वास करते हैं–उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४६॥

[४७]

दोषान्न स्थिर जङ्गमेषु कलयन् कस्यापि नोद्वेजयन्
किञ्चिद्यत्तदयत्नलब्ध-मितभुक् चित्तेऽपि न स्त्रीक्षणः ।
श्रीराधा-मुरलीधरोज्ज्वलयशः शृण्वन् गृणन् संस्मरन्
यो वृन्दावनमावसेन्मधुरधीर्धन्याय तस्मै नमः ॥

स्थावर-जङ्गम में दोष दृष्टि रहित होकर, किसी को भी उद्वेग न देकर, विना यत्न जो मिल जाय, उसे खाकर, चित्त से भी स्त्री-जाति के प्रति न देख कर एवं श्रीराधामुरलीधर के उज्ज्वल यश का श्रवण-कीर्त्तन एवं स्मरण करते-करते जो मधुरबुद्धि पुरुष श्रीवृन्दावन में वास करता है, उस महाभाग्यवान को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४७

[४८]

श्रीवृन्दाटवि ! हन्त संवृणु निजां मायां महाधीशितु–
र्मायातस्त्वयि नो बिभेमि जनयेत् कम्पं त्वदीया पुनः ।
स्वं स्वीयं सुखचिद्घनं वत यया सन्दर्श्यतेऽन्यादृशं
दूरादेवपतन्ति नष्टमतयो जातापराधा यतः ॥

हे श्रीवृन्दावन ! आप अपनी माया का सम्वरण कीजिये, महाधीश्वर की कृपासे मुझे यहाँ और कोई भी भय नहीं है, किन्तु आपकी माया मुझे कम्पायमान करती है ; क्योंकि जो (माया) आपको एवं आप में अवस्थित जितनी सुख-चिद्घन वस्तुओं को अन्य प्रकार (प्राकृत) प्रतीयमान कराती है, उसे ही देखकर नष्ट-बुद्धि पुरुष अपराध युक्त होकर दूरसे ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।।४८

[४६]

हा वृन्दाटवि ! किं करोमि न मनाग् दुष्टेन्द्रियाणां गणा
उल्लङ्घ्याखिललोकधर्मपदवीमाधावतां कुत्सिते ।
नाकर्षे मम शक्तिरस्ति घटतेऽक्षम्योऽपराधस्त्वयि
क्वाप्यप्यत्र न मे सुखं तदगतिं मा मुञ्च मा मुञ्च माम् ॥

हे वृन्दावन ! मैं क्या करूं ? अखिल लोकधर्म-मार्ग का उल्लंघन करते हुए कुत्सित विषयों में प्रवेश करने वाली दुष्ट इन्द्रियों की संख्या भी थोड़ी नहीं है। उनको रोकने की शक्ति भी मुझ में नहीं है, इसलिए आपके प्रति अमार्जनीय अपराध होता है, और कहीं भी मेरे लिए सुख नहीं है, मैं तुम्हारी शरणागत हूँ ; मुझे त्याग नहीं करना, त्याग नहीं करना ॥४६॥

[५०]

नैवान्यत्र क्षणमपि मया शक्यते स्थातुमत्राऽ –
मृष्यात्युच्चैरसम–कुधियो जायते मेऽपराधः ।
हा हा वृन्दावन ! कुविषयैकाशया लोकधर्मौ
त्यक्त्वा स्वैरं विचरति मयि त्वं कृपा भाविनी किम्?॥

" अन्यत्र क्षणकाल भी मैं नहीं रह सकता " इसकी अति गम्भीर विवेचना करने से मुझ मतिमन्द को अपराध लगता है। हा हा श्रीवृन्दावन ! कुविषयों की आशा में लोक-धर्म त्याग करने-वाले एवं यथेच्छाचारी मुझ पर क्या आप कृपा करेंगे ? ॥५०॥

[५१]

महाश्चर्यौदार्याः परमकरुणार्द्रार्द्र हृदया
महाद्दिव्यानन्तस्वरसविलसद् वैभवभराः ।
हरिप्रेमावेश — प्रकट — पुलकाश्रु व्यतिकराः
परां वृन्दारण्ये विदधतु मयि स्वीकृतिमगाः ॥

महाश्चर्य-उदारताशील परम करुणामय, आर्द्र हृदय, महा-दिव्य अनन्त स्वरस विलासमय सम्पत्तिशाली, हरि-प्रेमावेश में पुलक अश्रु आदि प्रगट करने वाले इस श्रीवृन्दावन के वृक्षराज मुझे परम उत्तम रूप से स्वीकार करें ॥५१॥

[५२]

अमी राधाकृष्णप्रणय – रसपूर्ण – विटपिन –
स्तयोः प्रीत्यै नानाद्भुतफलप्रसूनानि दधति ।
तदिच्छातो हस्ते स्वयमुरु पतिष्णू विहगा –
रवैर्भृङ्गीगीतैरपि च मधुरैर्विभ्रति मुदम् ॥

यहाँ के समस्त वृक्षगण श्रीराधाकृष्ण के प्रणय-रस से परिपूर्ण हैं, ये श्रीयुगलकिशोर की प्रीति के लिए अनेक प्रकार के फल-फूल धारण करते हैं और फल-फूल उनकी इच्छानुसार उनके हाथों में अपने आप पुनः पुनः गिरते हैं। और ये वृक्षगण, पक्षी-समूह की सुन्दर ध्वनि एवं मधुर मधुकरों की गुञ्जार से भी युगल-किशोर को आनन्दित करते हैं ॥५२॥

[५३]

ये श्रीराधामुरलीधरयोः श्रीलपादारवृन्द –
स्पर्शानन्दात् पुलकिततनु स्यन्दमानाश्रुधाराः ।
यत्पुष्पाद्यैः स्वयमतिरसातौ मिथो वेशयेतां
वृन्दारण्यद्रुमतनु महाधन्यधन्यान्नमस्तान् ॥

जो श्रीराधामुरलीधर के श्रीचरणकमलों के स्पर्शानन्द वश पुलकित शरीर से अश्रुधारा वरसाते हैं, जिनके पुष्पादि के द्वारा वे श्रीयुगलकिशोर अति रसयुक्त होकर स्वयं एक दूसरे की वेश-भूषा रचते हैं, उन श्रीवृन्दावन-वासी वृक्ष-स्वरूप महा धन्य-धन्य महापुरुषों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५३॥

[५४]

किञ्चित् खर्परघर्षणेन विदधद्दिव्याङ्गरागं मिथः
स्यूतैर्दिव्यदलैः स्तुतैः कृतपटं पुष्पादिभिर्भूषितम् ।
पीत्वा स्यन्दिमधूत्पुटैः स्थलशयं श्लिष्ट्वा प्रशस्य प्रियं
गौरश्याममहोद्वयं मम तदानन्दाब्धि वृन्दावने ॥

खर्पर घिसने से परस्पर कोई दिव्य अङ्गराग करते हैं, सुन्दर रमणीय दिव्य पत्रादिकों को सिलाई करके वस्त्र रूप से धारण करते हैं, पुष्पादि द्वारा अलंकृत होते हैं, पत्रादि से रचित दोनों (पात्रों) में च्चरित मधुपान करके उनके नीचे शयन करते हैं, परस्पर एक दूसरे को आलिङ्गन और प्रशंसा करते हैं—वे मेरे प्रिय श्रीगौरश्याम युगलकिशोर आनन्द के समुद्र श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं ॥५४॥

[५५]

विस्रस्तं वरकेशबन्धमुदयद्रोमाञ्चपुञ्जं स्खलद् –
वाक्पीयूषभरं त्रुटन्मणिसरस्रक्खण्डितालेपनम् ।
यत्तत्वल्पतपरिच्छदं रसमयीं यत्तद्विचेष्टां दधद्
धामद्वन्द्वमनङ्गविह्वलमुपैम्येकात्म वृन्दावने ॥

युगलकिशोर के केशबन्धन खुले हैं, दोनों पुलकित हो रहे हैं, स्खलित गति हैं एवं वचनामृत का प्रवाह बरसाने वाले हैं, मणिमाला टूट रही है, कस्तूरी आदि के लेप से सर्वाङ्ग शोभित हो रहे हैं, बहुत सूक्ष्म सा वस्त्र कटि में धारण कर रहे हैं, इस प्रकार एक स्वभाव विशिष्ट कामातुर युगलकिशोर के श्रीवृन्दावन में दर्शन करता हूँ ॥५५॥

[५६]

वृन्दारण्ये भ्रमदतिरसावेशतो घूर्णमानं
गौरश्यामं किमपि मधुरं धामयुग्मं किशोरम् ।

मालावस्त्रादिकमपि ततः पूर्यमाणं मुहुस्तै –
दासीवृन्दैरतिपुरुमुदा सेव्यमास्तां कदापि ॥

श्रीवृन्दावन में भ्रमण करते करते अतिशय रस-वश इधर-उधर विहारशील कोई मधुर गौरश्याम युगलकिशोर विराजमान हैं। सदा दासीवृन्द माल्य-वस्त्रादि द्वारा अति आनन्दपूर्वक उनकी शोभा संवर्धन करती हुई उनकी सेवा करती हैं ।।५६।।

[५७]

श्रीवृन्दावन नित्यकेलिकलया चाहर्निशं मन्मथा –
क्रान्तं नित्यकिशोरमोहनमहोद्वन्द्वं किमप्यद्भुतम् ।
प्रत्यङ्गोच्छलदप्रमेय — मधुरश्रीगौरनीलोज्ज्वल –
ज्योतिः पूर्णसुधाब्धिलीन-चिदचिद्भेदप्रपञ्चं भजे ॥

श्रीवृन्दावन की नित्य केलि-कला द्वारा दिन-रात कामातुर नित्य-किशोर जिस अद्भुत मनोहर जोड़ी के प्रतिअङ्ग से उच्छलित असीम मधुर शोभायुक्त गौरनीलात्मक उज्ज्वल ज्योतिपूर्ण अमृत-समुद्र में स्थावर जङ्गम भेदमूलक संसार विलीन हो रहा है, उस श्रीयुगलविग्रह का भजन कर ।।५७।।

[५८]

विटपे विटपे दले दले प्रतिपुष्पं फलपल्लवादिषु ।
वहुसौरभ–सीधुरोचिषः स्मर वृन्दावन-दिव्यशाखिनः ॥

प्रति शाखा में, प्रति पत्र में, प्रति फूल में, प्रति फल-पल्लवादि में ही अति सौरभामृत कान्तियुक्त—श्रीवृन्दावन के दिव्य वृक्षगणों को स्मरण कर ।।५८।।

[५९]

पुलिने पुलिने यमस्वसुर्द्रुमवृन्दैर्हरिचन्दनादिभिः ।
विहरन्नवकुञ्जमुञ्जुले भजगौरासित-धामतद्द्वयम् ॥

श्रीयमुना-पुलिनों में हरिचन्दन आदि के वृक्षों से विरचित नवीन-नवीन मनोहर कुञ्जों में विहार-परायण उन श्रीगौरश्याम युगलकिशोर का भजन कर ॥५६॥

[६०]

कनकमरकत-श्रीहरि-दिव्याङ्गयोस्त –
न्मधुर मधुर धाम्नोः केलिवृन्दं कयोश्चित् ।
अतिमधुरिमसान्द्रानन्दनिस्यन्दि वृन्दा –
वनमनु रससिन्धोः सारमीचो कदा नु ॥

हाय ! मैं स्वर्ण व मरकत मणि की शोभा हरण करने वाले दिव्याङ्गी एवं अनिर्वचनीय मधुर से मधुरतर युगल-विग्रह की, श्रीवृन्दावन में प्रकटित अति मधुरसार-घनानन्द बरसाने वाले रस-समुद्र की सार-स्वरूप लीलाओं का कब दर्शन करूंगा ?॥६०॥

[६१]

श्रीगान्धर्वा-प्राणबन्धोः पदाब्जद्वन्द्वोन्मीलत् प्रेमपीयूषसिन्धोः ।
स्वादन्तेऽत्याश्चर्यमाधुर्यधाराः श्रीमद्वृन्दाकानने केऽपि धन्या ॥

श्रीमद्वृन्दावनवासी कोई कोई भाग्यवान् पुरुष ही श्रीराधा-प्राणबन्धु के युगल-चरण-कमलों से विगलित प्रेमामृत समुद्र की अति आश्चर्यमय माधुर्य-धारा का आस्वादन कर पाते हैं ॥६१॥

[६२]

सर्वानन्दाच्छादकानन्द सारा –
सारान् वर्षन् प्रेमवर्षा प्रकर्षान् ।
वृन्दारण्ये सद्द्रुमैर्दुर्दिने श्री –
कृष्णाम्भोदो भाति राधा-तड़ित्वान् ॥

समस्त आनन्द-राशियों को आच्छादन करने वाला जो आनन्दसार है, उस प्रेम का वर्षा-प्रवाह करते हुए इस श्रीवृन्दावन

के वृक्षों के पीछे श्रीराधारूप तड़ितयुक्त श्रीकृष्णरूप घन उदित हो रहा है ।।६२।।

[६३]

विकच-नवसुहेमचम्पकेन्दीवरदलवृन्द-सुगौरनीलभासोः ।
स्फुरतु चरितवृन्दमेव वृन्दावनभुवि नूतनदिव्यगोपयूनोः ॥

प्रफुल्लित नव हेम-चम्पक एवं नील कमल-दलवत् उज्ज्वल गौरनील-कान्तियुक्त जो नव दिव्य गोप-गोपी श्रीवृन्दावन में प्रकाशित हो रहे हैं—उन दोनों की लीलाएं मेरे हृदय में स्फुरित हों ।।६३

[६४]

द्रुतकनक – महेन्द्रनीलरोचिर्द्वितयमहः स्फुरदाद्ययौवनश्रि ।
निरवधि मदनोन्मदावघूर्णं परिचर चारुकदम्ब कुञ्जवीथ्याम्॥

तप्त स्वर्ण एवं इन्द्रनील मणिवत् कान्तियुक्त युगलविग्रह श्रेष्ठ यौवन-शोभायुक्त प्रकाशित हो रहे हैं, सुन्दर कदम्ब कुञ्ज-वीथियों में निरतिशय मदन मत्तता में इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं— उन युगलकिशोर की सेवा कर ।।६४।।

[६५]

पररसवरवृन्दकन्दवृन्दाविपिन महाद्भुत पुष्पवाटिकायाम् ।
विहरति मम गौरनीलमात्मद्वयमतिकामविमोहितं किशोरम् ॥

परम रसमय श्रेष्ठ वस्तुओं के मूलीभूत श्रीवृन्दावन की महाद्भुत पुष्प-वाटिका में मेरे प्राणस्वरूप श्रीगौरश्याम युगलकिशोर अतिशय काम-विमोहित होकर विहार करते हैं ।।६५।।

[६६]

कुसुमितवनराजिमञ्जुगुञ्जन्मधुप करन्वित कोकिलाकुहूभिः ।
मुहरति विधुरौ स्मरामि राधामुरलिधरौ सहसा स्थितौ निकुञ्जे ॥

प्रफुल्लित वनराजि, मधुकरों की मनोहर गुञ्जार, कोकिलाओं की

कुहू-कुहू-ध्वनि से बार-बार अति विधुर हुए श्रीराधामुरलीधर हठात् निकुञ्ज में विराजमान होरहे हैं, मैं उनका स्मरण करता हूँ॥६६

[६७]

माद्यद्भृङ्गवराङ्गनाभिरभितः सङ्गीतमङ्गीकृतं
कुर्वन्ति स्वकुहूकुहूरिति मुहुः कोलाहलं कोकिलाः।
लीलाताण्डवितं शिखण्डिभिरतिप्रावर्त्ति बल्लिद्रुमाः
सर्वेऽत्यन्तसुपुष्पितास्तव मुदे राधेऽद्य वृन्दावने॥

हे राधे! मत्त भ्रमरीगण इधर-उधर सङ्गीत कर रही हैं, कोकिलाएं अपना कुहू-कुहू कलरव कर रही हैं, मोर लीला-ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, लता-वृक्षराजि भी समस्त प्रफुल्लित होकर श्रीवृन्दावन में आज तुम्हारे आनन्द की वृद्धि कर रहे हैं॥६७॥

[६८]

पश्चादेत्य प्रियमतिरसाद्यत्र नेत्रे पिधाय
ज्ञातं मुञ्चत्वमसि ललितेत्याह राधा हसन्तम्।
सत्यं ज्ञातं यदसि पुलकिन्येव मालीं हसन्तीं
सन्दर्श्यान्या शिशिरमरुतं पल्लवेनाजघान॥

प्रीतम ने पीछे से आकर रसाधिक्य में श्रीराधा के नेत्रों को आवृत किया एवं हंसने लगे—श्रीराधा ने कहा—"मैं जान गई हूँ, अब छोड़ दो, तुम ललिता हो।" एक सखी ने हंस कर कहा "सत्य जान गई हो, जिससे तुम पुलकित भी हो रही हो।" दूसरी सखी उसे दिखा कर पल्लव द्वारा शीतल वायु सञ्चार करने लगी (इशारे से जनाया कि "वे श्यामसुन्दर हैं-ऐसा मत बताना)॥६८॥

[६९]

यत्रानन्तरती रतिस्मर महाविस्मापि-रूपश्रियौ
श्रीराधातदनन्य नागरमणी रात्रिन्दिवं क्रीडतः।

नित्याश्चर्यकिशोरवेशललितौ लोलैः सखीमण्डलै-
रेकात्म्योज्ज्वलभावनाश्रु पुलकैर्नित्योत्सवैः सेवितौ॥

अनन्त रति-कामदेव को भी महा विस्मय उत्पन्न करने वाले रूपशोभायुक्त श्रीराधा एवं उसके अनन्य नागरमणि वहाँ रातदिन अनन्त रतिक्रीड़ा करते हैं, एवं एकात्म-उज्ज्वल-भावनायुक्त अश्रु-पुलकित-गातयुक्त चञ्चल सखीगण द्वारा नित्योत्सव के अनुष्ठान में नित्य आश्चर्यमय किशोरवेशधारी ललितयुगलसरकार की सेवा होती है ॥६९॥

[७०]

राधाकृष्णसुगौरनीलवपुरुद्वेलच्छटाम्भोनिधिः
पूरैः प्रेमरसात्मकस्य चिदचिद्द्वैतप्रथा प्रोञ्झनः ।
श्रीवृन्दावनमुज्ज्वलोज्वलमनाद्यन्तोल्लसत्तन्महा –
नङ्गोतुङ्गविहाररङ्गमखिल — व्यासङ्गभङ्गं भजे ॥

श्रीराधाकृष्ण का सुगौरनीलवपु मानो असीम कान्ति-समुद्र हैं, उसके प्रेम-रसात्मक-प्रवाह द्वारा चिद्-अचिद् निखिल वस्तुओं की द्वैत-प्रथा (भेदमूलक व्यवहार) लुप्त होरही है। अत्युज्ज्वल अनादि, अनन्त प्रकार से उल्लासशील महा-कामदेव की अति महा विहारस्थली एवं अपने सिवाय अखिल वस्तुओंकी विशेष आसक्ति के नाशक श्रीवृन्दावन का मैं भजन करता हूँ ॥७०॥

[७१]

स्वामिन्यास्स्व क्षणमिह मनाङ्मोहनात्रैव तिष्ठ
सम्यक कुर्वे विततसूरताऽन्याद्दगङ्गाम्बरादि ।
प्राप्तप्राया इह हि ललिताद्यालयोऽन्वेष्यमाणा
हासं हासं सपदि ललितं लज्जयिष्यन्ति सर्वाः ॥

हे स्वामिनि ! यहाँ क्षण काल के लिए बैठिए ; हे मोहन !

यहाँ अवस्थान करो, जिससे मैं ढीले-ढाले वसनादिकों को उत्तमरूप से आपको पहिना सकूं। ललितादि सखीगण भी तुम्हें ढूढ़ती हुई शीघ्र ही तुम्हारे पास आ रही हैं, वे हंस हंस कर तुम्हें उत्तमरूप से लज्जित करेंगी ॥७१॥

[७२]

तत्सौन्दर्यं किमपि कलयत् सन्नवाणीमरन्द -
स्यन्दैःसान्द्रप्रसृमर-महाचन्द्रिकास्यारविन्दे ।
सर्वाङ्गेषु प्रकटपुलकानङ्गवैवश्यलोलद्
गौरश्यामाङ्कमविरहं यत्र भाति द्विधाम ॥

गद्गद् वाणीरूप मधु-धारा वर्षनकारी एवं सान्द्र विस्तृत महा-चन्द्रिकामय मुख-कमल में अनिर्वचनीय सौंदर्य दर्शन करते हुए जिनके सर्वाङ्ग पुलकित हो उठते हैं एवं अनङ्ग-विवशता-वश जो चञ्चल हो उठते हैं, वे नित्य-मिलित गौरश्यामात्मक युगल-विग्रह यहाँ (श्रीवृन्दावन में) नित्य विराजमान हैं ॥७२॥

[७३]

यत्राऽन्योन्यप्रणय सरसावेशपूर्णायताङ्गं
हासं हासं रुचिरकलयाऽन्योन्य सङ्घट्टिताङ्गम् ।
बारं बारं सुरस-समरोत्साहसन्नद्धमूर्त्ति -
ज्योतिर्द्वन्द्वं विशति सहसा मञ्जुकुञ्जाजिरेषु ॥

वहाँ युगलकिशोर अपने अङ्गों को परस्पर प्रणय के रसमय आवेश से पूर्ण करते हैं, दोनों हास्य करते करते मनोज्ञ-कला-विलास में परस्पर आलिङ्गन करते हैं। बार-बार रसाल-रति-रण-उत्साह में सज्जित होकर सहसा मञ्जुल कुञ्ज-चौतड़े में प्रविष्ट होते हैं ॥७३॥

[७४]

वेणीचूड़ातिलकरचनैर्गन्ध - ताम्बूल - माल्यै -
र्दिव्यैः सूक्ष्मोज्ज्वलवरपटैर्दिव्यदिव्यान्नपानैः ।
सम्यक् सम्वीजनमृदुपदाम्भोज सम्वाहनाद्यैः
सख्यो राधामुरलिधरणौ यन्निकुञ्जे भजन्ति ॥

इस श्रीवृन्दावन की कुञ्ज में सखीगण वेणी-चूड़ा एवं तिलक आदि रचना कर, गंध, ताम्बूल, माल्यादि अर्पण कर, दिव्य-दिव्य सूक्ष्म उज्ज्वल वस्त्रादि पहिना कर, दिव्य-दिव्य अन्न पानादि भोजन कराकर, सुन्दर संबीजन (पंखा) और मृदुपाद-सम्वाहन आदि के द्वारा श्रीराधामुरलीधर की सेवा करतीं हैं ॥७४॥

[७५]

काश्चित् कुञ्जान्निरवधि परिष्कुर्वते श्रीविभेदै -
र्ग्रथन्त्यन्या विविधकुसुमैर्दिव्यमाल्यादिकानि ।
काश्चिद्युक्त्या विदधति मुदा दिव्यगन्धप्रकारान्
काश्चित् कुञ्चन्त्यतिवरपटं यत्र राधा-सुदास्यः ॥

श्रीवृन्दावन में श्रीराधा की उत्तमोत्तम दासीगणों में कोई-कोई तो निरन्तर कुसुमों को परिष्कार करती हैं, शोभाभेद से विविध पुष्पों द्वारा कोई कोई दिव्य मालादि की रचना करती हैं, कोई आनन्दपूर्वकयुक्ति से गन्ध-द्रव्यादि प्रस्तुत करती हैं, और कोई अति सुन्दर रेशमी वस्त्र बुनने में नियुक्त हो रही हैं ॥७५॥

[७६]

तृणीकुर्वत् सर्वास्त्रिदशतरुणीर्नव्यवयसो
महामाधुर्य्यौघैरपि सुषमयैकाङ्गगतया ।
वधूवृन्दं वृन्दावनभुवि भजस्तद्रसमयं
महोद्वन्द्वं निष्पन्दयदपि मुनीन्द्रं स्मर मनः ॥

हे मन ! महामाधुर्यराशि एवं एकाङ्गस्थित-शोभा द्वारा समस्त दिव्य नवीन युवती देवीगणों की भी जो युगल-रसाविष्ट-चित्त वधुवृन्द (व्रज-गोपीगण) तृणवत उपेक्षा करतीं हैं, उनका भजन कर और मुनीन्द्रगणों को भी चित्रवत् कर देनेवाले श्रीयुगल-किशोर का इस श्रीवृन्दावन में भजन कर ॥७६॥

[७७]

सा वृन्दाकाननश्रीस्तदसमसुषमावैभवं गौरनील -
श्रीदम्पत्योरुदारे नववयसि सतोः केवलानङ्गरङ्गे ।
तादृक् प्राणद्वयाराधनरसविवशा दिव्यलावण्यरूप-
श्रीभिः पूर्णाः किशोर्योज्ज्वलित-दशदिशो यूथशो मे स्फुरन्तु ॥

श्रीवृन्दावन की वही शोभा, गौरनील-कान्ति युक्त युगल-सरकार की केवल अनङ्ग-रङ्गमय उदार नवीन रसकी वही अनुपम सुषमा-राशि एवं उसी प्रकार प्राण-प्रीयतम युगलकिशोर के आराधन-रस से विवश हुईं दिव्य लावण्य-रूप-शोभा-सम्पन्ना वही किशोरीगण यूथ-यूथ में दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुईं मेरे हृदय में स्फुरित हों ॥७७॥

[७८]

अनन्तब्रह्माण्डावलि-वलितमूलप्रकृतितः
सुदूरे स्वादीयो जयति भगवज्ज्योतिरमृतम् ।
तदन्तर्वैकुण्ठं तदतिरहसि स्वादिम-महो,
मनोभु-बीजात्मद्युतिमदिह वृन्दावनमिदम् ॥

अनन्त ब्रह्माण्ड-राशि सम्वलित मूल प्रकृति के परे अमृतमय आस्वादनीय भगवज्ज्योति जय युक्त हो रही है—उसके अन्तःस्थल में वैकुण्ठ हैं, उसके भी अति गुप्त स्थान में काम-बीजात्मक द्युतिशील आस्वादनीय श्रीवृन्दावन विराजमान है ॥७८॥

[७६]

स्थलं वृन्दारण्ये मृदुलविपुल-स्वच्छमधुरं
महाचिन्तारत्नप्रचयमथमानन्दसदनम् ।
महादिव्यामोदं प्रणयरस-साराकरमहं
परागाणां पुञ्जोज्ज्वलमतिविचित्रच्छबिभजे ॥

श्रीवृन्दावन-मृदुल, अति स्वच्छ, मधुर, महा चिन्तामणि-समूहयुक्त है, आनन्द-निकेतन, महा दिव्य सुगन्धि पूर्ण तथा प्रणय रस-सार का घर है। पराग से उज्ज्वल तथा अति विचित्र कांति युक्त है, मैं इसका भजन करता हूँ ॥७६॥

[८०]

इहैव श्रीराधामुरलिधरयौ स्वारसिक-स-
न्मिथो भावाविष्टौ नवनव-वयोरूपमधुरौ ।
महाप्रेमानन्दोन्मद्-रसचमत्कारनिकरौ
किशोर्योऽत्याश्चर्या निरवधि भजन्ते प्रणयतः ॥

यहाँ श्रीवृन्दावन में अति आश्चर्यमय किशोरीगण—एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक सुन्दर भावाविष्ट-चित्त, नव-नवायमान वयस एवं रूपमाधुर्य-मण्डित तथा महा प्रेमानन्द की उन्मत्तता-जनक रस-चमत्कारधारी श्रीराधामुरलिधर का निरन्तर प्रीतिपूर्वक भजन करती हैं ॥८०॥

[८१]

राधाकृष्णपदारविन्दमकरन्दास्वादमादूयन्मनो –
भृङ्गाः सन्तत-मुद्गताश्रुपुलकास्तत्प्रेम तीव्रौघतः ।
अत्यानन्दभरात् कदाप्यतिलये शोचन्त्य आत्मेशयोः
सेवाया विहतेः स्फुरन्तु मम ताः श्रीराधिकाराधिकाः ॥

जिनका मन मधुकर श्रीराधाकृष्ण के चरण-कमलों के मकरन्द आस्वादन में उन्मत्त हो रहा है, युगल-प्रेम के तीव्र-प्रवाह में जिन

में निरन्तर ही अश्रु-पुलकादि उत्पन्न होते हैं, एवं प्राणेश्वर युगल-किशोर के कभी आनन्द वश अथवा लुब्ध होने पर, उनकी सेवा में विघ्न आ जाने से जो अनुताप करती हैं—वे श्रीराधिका-दासीगण मेरे हृदय में प्रस्फुरित हों ॥८१॥

[८२]

स्वप्राणद्वयकार्यतस्तत इतो लोलाः कपोलस्थली–
वेंलत् काञ्चनकुण्डलाः कटिरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुराः।
चूड़ामञ्जु रणत्कृतैः सुमधुरा दिग्व्यापकाङ्गच्छटा
राधाकर्मकरीः सुहेमलतिकास्तन्वीः किशोरीः स्मर ॥

अपने प्राणेश्वर युगलकिशोर के कार्यवश इधर-उधर आने-जाने से जिनके कपोलों पर स्वर्णकुण्डल अति डोलायमान होरहे हैं ; कटि में काञ्ची व नूपरों की ध्वनि होती हैं, चूड़ा में अति मनोमद मधुर ध्वनि होती है, जिनकी अङ्ग-कान्ति से दशोंदिशाएं प्रकाशित होती हैं, इस प्रकार सुन्दर स्वर्ण लतावत् कृशाङ्गी किशोरी-श्रीराधा-दासीगण को स्मरण कर ॥८२॥

[८३]

पृथुकटितटशाटी - विस्फुरत्किङ्किणीका –
श्चरणकमलसिञ्जन्मञ्जु मञ्जीरशोभाः ।
कुचमुकुल-विराजत् कञ्चुली-लोलहाराः
स्मरत कनकगौरीराधिकाकिङ्करीस्ताः ॥

स्थूल कटि देश में साड़ी पर किङ्किणी शोभायमान होरही है, चरणकमलों में शोभायमान मनोज्ञ नूपुर विराजमान हैं, कुच-मुकुलों पर चोली के ऊपर हारसमूह इधर-उधर डोलायमान होकर अति शोभित हो रहे हैं । इस प्रकार की स्वर्णगौराङ्गी श्रीराधादासी-गण को स्मरण कर ॥८३॥

[८४]

मणिकनक-निबद्धानर्घ्य-मुक्ताद्यनासा
बहुलचिकुरवेणी विस्फुरद्रत्नगुच्छाः ।
अमित-कनकचन्द्रज्योतिसुस्मेरवक्त्रा
नवतरुणिम-लीलाः कान्ति सम्मोहनाङ्गीः ॥

मणि-स्वर्ण-जड़ित बहुमूल्य मुक्तादि से उनकी नासिका शोभित हो रही है, घने केशयुक्त वेणी में रत्नों के गुच्छे प्रकाशित होरहे हैं, अनुपम स्वर्णचन्द्र ज्योतिवत् मुख-मण्डल सुमधुर मृदुहास्य से उज्ज्वल हो रहा है, एवं नवीन तारुण्य, लीला और कान्तिधारा से वे अनुपम जगन्मोहिनी मूर्त्ति धारण कर रही हैं ॥८४॥

[८५]

सहजमधुर-राधाकृष्ण-तीव्रानुराग –
प्रसरमुहुरुदञ्चच्चारुरोमाञ्चपुञ्जाः ।
प्रतिपदपरिवृद्धानन्दसिन्ध्वावगाधे
प्रतिमुहुरतिमत्तोत् फुल्लिताङ्गा हसन्तीः ॥

श्रीराधाकृष्ण के प्रति सहज, मधुर, तीव्र अनुरागवश बार-बार उनमें सुन्दर रोमाञ्च होता है, प्रतिपद में वर्धनशील अगाध आनन्द सिन्धु में प्रति-क्षण अति उन्मत्त और प्रफुल्लित होकर वे हंसती हैं ॥८५॥

[८६]

नवकनक-सुगौरज्ज्योतिरङ्गच्छटौघैः
खचित-दश दिगन्ता दिव्यकैशोररूपाः ।
तदतिरस-किशोरद्वन्द्वभावोन्मदान्धा
विविध-वसनभूषा भान्ति राधानुचर्यः ॥

नवगलित स्वर्णवत् सुगौर ज्योतिर्मय अङ्गों की कान्ति से वे

दशोंदिशाओं को प्रकाशित करती हैं, दिव्य किशोरवयस, युगल-किशोर के रसातिशय्य में एवं भावमें मदान्ध विविध वसन-भूषणों से सुसज्जित श्रीराधिका-दासीगण प्रकाशित हो रही हैं ॥८६॥

[८७]

श्रीमद्वृन्दावन-नवलता-मन्दिरेष्विन्दिरेश -
ध्यानास्पदात्मनि परिचितेनाद्भुतेन्दिन्दिरेण ।
केनाप्यन्वेषित-पररसामोद-सर्वस्वयोर्मे
श्रीगान्धर्वापदकमयोर्दास्यमाश्वास्यमस्तु ॥

श्रीमद्वृन्दावन के नवलता-मन्दिरों में लक्ष्मीकान्त के भी ध्यान करने योग्य किसी एक अद्भुत मधुकर द्वारा अन्वेषित श्रेष्ठ रसानन्द के सब सारभूत श्रीराधा के युगलपद कमलों का दासत्व ही मेरे आश्वास की वस्तु हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥८७॥

[८८]

चिन्तारत्नप्रकरविलसच्छर्करं सत्परागो -
न्मीलत्पुञ्जप्रकटरसवत्तकृष्णराधापदाङ्कम् ।
नाना-वर्णोज्ज्वलमणिमयं चिद्रसापाररोचिः
श्रीमद्वृन्दाविपिनवरभूमण्डलं संस्मरामि ॥

जहां के प्रति कङ्कर में चिन्तामणि समूह प्रकाशित होते हैं, प्रति रजकणा में रसिक-श्रीराधाकृष्ण के पद-चिन्ह पुञ्ज प्रकट होते हैं, नाना वर्ण की उज्ज्वल मणियों से खचित चिद्रसमय अपार कान्तियुक्त श्रीमद्वृन्दावन के श्रेष्ठ भूमि-मण्डल को मैं सम्यकरूप से स्मरण करता हूँ ॥८८॥

[८९]

वृन्दारण्यस्थलीयं सुविमलमृदुलाकान्तकान्तानितान्त -
विस्फुर्जाद्दिव्यरत्नच्छविरतिमसृणानन्दसान्द्रातिवासा ।

शाखौघैः पत्रपूर्णैरुपरिहिततुषारातपादिस्तरूणां
नात्रापेक्षास्तरादेस्तदुपरि विशतोः खेलनं किञ्चिदत्र ॥

श्रीवृन्दावन की स्थली सुविमल एवं कोमल है,कान्त (श्रीकृष्ण) और कान्ता (श्रीराधा) युगल की दिव्य रत्नकान्ति के आधिक्य से स्फूर्त्ति-प्राप्त है, अति मसृणा एवं आनन्दघन का निवास-स्थान है, जहाँ-जहाँ वृक्षों की पत्रपूर्ण शाखाएं ही तुषार-धूपादि अपने ऊपर सहन करती हैं, यहाँ चन्दोआ-आदि की कोई आवश्यकता नहीं है, यहां विराजमान होकर श्रीयुगलकिशोर अनुपम लीला करते हैं।।८६

[६०]

वन्दे काञ्चन दिव्यकाञ्चनमयीं काञ्चिन्महानीलम -
ण्युद्दीप्तां कुरुविन्दवृन्दलसितामन्यां परां वैद्रुमीम् ।
वैदूर्योज्ज्वलिताञ्च कामपि परां श्रीचन्द्रकान्तोज्ज्वलां
श्रीवृन्दावनभूमिमेकरसचिज्ज्योतिर्मयीमद्भुताम् ॥

कहीं दिव्य काञ्चनमयी, कहीं महा नीलकान्तमणि से उद्दीप्त, और कहीं कुरुविन्द से उल्लसित, तथा कहीं विद्रुममणिमय स्थल हैं। कहीं वैदूर्यमणि से प्रकाशित और कहीं चन्द्रकान्त मणि से उद्भासित हो रही है, इस प्रकार एक-रस-चित्ज्योतिर्मय अद्भुत श्रीवृन्दावन-भूमि को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६०।।

[६१]

दिव्यानन्तमहारसाब्धिमधुरद्वीपायमानां सदा
भ्राजन्तीं सकलोपरि स्मरकलानन्दैश्चमत्कारिणीम् ।
राधाकृष्ण-महारसान्ध्य-विलुठत् सर्वाङ्गसङ्गाद्भुत -
श्रीसौभाग्यनिधिं स्मरामि सततं वृन्दावनीयावनीम् ॥

वह भूमि दिव्य अनन्त महारस के द्वीपवत्, सदा समस्त जगत के ऊपर विराजमान, एवं कामकला-आनन्द में चमत्कारी है।

श्रीराधाकृष्ण के महारस में मदान्ध होकर सर्वाङ्गों से विलुण्ठन करनेवालों के लिए अद्भुत शोभा सौभाग्यनिधि स्वरूपा इस श्रीवृन्दावन-भूमि को निरन्तर स्मरण कर ।।६१।।

[६२]

राधाकृष्ण-सुकेलितल्परचना-लोलालिवृन्दं रसा–
वेशोन्मत्त-मृग-द्विज-द्रुम-लतावृन्दं महामोहनम् ।
दिव्यानेकनिकुञ्जपुञ्जरुचिरं दिव्योरुरत्नस्थली –
रम्यं दिव्यसरःसरिन्मणिगिरि ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

इस श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण की सुन्दर केलिशय्या रचने में सखी व्यस्त हैं, रसावेश में मृग, पक्षी, द्रुमलता-समूह उन्मत्त हो रहे हैं, दिव्य अनेक निकुञ्ज-पुञ्ज शोभित हैं, दिव्य-दिव्य अनेक रत्नस्थली द्वारा रमणीय, दिव्य-दिव्य सरोवर, नदी और मणिमय पर्वतों से भूषित-इस महामोहन श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ ।।६२

[६३]

माद्यच्छ्रीकृष्णराधं मद-कलसकलस्थास्नु सञ्चारिसत्वं
माद्यत्कन्दर्पदर्प-प्रतिपद-गरिमोन्मत्त भूषाम्बरादि ।
माद्यत्कालेन्दुताराद्यतिमदविवशस्निग्धगोपालबाला-
वृन्दं वृन्दावनं तत् स्वयमपि समदं भाति भूयो रसौघैः ॥

जहाँ श्रीराधा-कृष्ण उन्मत्त रहते हैं, जहाँ के स्थावर जङ्गमात्मक जीवमात्र सब मत्त होकर मधुर ध्वनि करते हैं, जहाँ उन्मत्त कामदेव का गर्व भी प्रतिपद में गरिमाव्यञ्जक उन्मादि वस्त्र-भूषण द्वारा उद्भासित होता हैं, जहाँ तत्कालीन चन्द्रतारादि भी मत्तता जनक हैं, जो अति मद विवश गोपालबालाओं से सुशोभित एवं स्वयं भी मद-विह्वल हो रहा है, ऐसा यह श्रीवृन्दावन रसधारा वर्षण कर पुनः-पुनः शोभित हो रहा है ।।६३।।

[६४]

दिव्यश्रीपारिजाताद्यतिरुचिरवनैः शोभमानामनन्तै –
रश्रान्तस्त्वं तु सञ्चिन्तय हरिचरणैकान्तभावं वहद्भिः ।
श्रीमद्वृन्दाटवीं तां सकलसुरगणैर्वन्दितामिन्दुकोटि –
ज्योत्स्नैकाम्भोधि-मग्नामुरुभिरुपनिषद्वृन्द-वृत्ताप्यगम्याम् ॥

अनन्त दिव्य शोभामय कल्पवृक्षादिकों के अति मनोहर वनों से भूषित, श्रीहरिचरणों में एकान्तभाव-प्रवीन एवं अनन्त देवताओं से वन्दित इस श्रीवृन्दावन-भूमि की तू निरन्तर चिन्ता कर । यह कोटि-कोटि चन्द्रज्योतिर्मय एक समुद्र में निमग्न है एवं उपनिषद् भी मुख्यभाव से इसकी महिमा जानने में असमर्थ हैं ॥६४॥

[६५]

अस्मिन् दुस्तरघोरसंसृतितरौ तापत्रयेणानिशं
भ्रातस्त्वं क्लिशितोऽस्यतीव न मनाक् प्राप्नोषि सन्धुक्षणम् ।
नैकं साधनमस्ति शास्त्रमहदाख्यातं तवाख्यातुम –
प्यन्तश्चिन्तय तद्धरेः प्रियतनूर्वृन्दाटवीशाखिनः ॥

हे भ्रातः ! इस दुस्तर घोर संसार रूप तरु से दिन-रात यदि त्रितापों में बड़ा क्लेश पा रहा है ? विन्दुमात्र भी तुम्हें शान्ति नहीं मिल रही ? तुम्हारा कुछ साधन भी नहीं है ? और शास्त्र व महाप्रसिद्ध श्रीहरि कथादिक भी तुम नहीं जानते हो ? तो श्रीहरि की प्रिततनुरूपा श्रीवृन्दावन-भूमि के वृक्षगणों की मन में चिन्ता कर ॥६५॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का षष्ठं शतक समाप्त हुआ ।



॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

सप्तमं शतकम्

[१]

भज विमल-मनोभु-बीज-चिज्ज्योतिरेका –
ब्ध्युदित-सुरस-दीप्तद्वीप-वृन्दावनद्रून् ।
तदतिमधुरगौरश्यामधामद्वयोरु –
प्रणय-परम - पात्रीभूत - चित्रीयमाणान् ॥

श्रीगौरश्यामात्मक अति मधुर-विग्रह श्रीराधा-कृष्ण के परम अनुपम प्रणय के परम-पात्रस्वरूप में चित्रित एवं निर्मल काम-बीजात्मक चित्-ज्योति के समुद्र में प्रकटित उत्तमरस (मधुररस) से देदीप्यमान द्वीप-स्वरूप जो श्रीवृन्दावन है, उसमें उदित जो श्रीवृक्ष-वृन्द हैं, उनका भजन कर ॥१॥

[२]

मुक्तान् प्रत्यपि कर्हिचिन्न ददतिसन्दर्शनं शुद्धया
रीत्या नो शुक-नारदादिभिरपि प्राप्ताङ्गसङ्गा मनाक् ।
सा श्रीकृष्णपदाब्जभक्तिरहह श्रीधाम्नि वृन्दावने –
यं कञ्चित प्रतिकामुकी तत इतो भावेन वंभ्रम्यते ॥

अहो ! जो मुक्तगणों को कदाचित् दर्शन नहीं देती, शुक-नारदादि शुद्धभाव से अल्पमात्र भी जिसका अङ्ग-सङ्ग प्राप्त

नहीं कर पाते, श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की वह भक्ति इस श्रीधाम-वृन्दावन में भावपूर्वक जिस किसी के प्रति कामुकी (इच्छावती) हो कर इधर-उधर भ्रमण कर रही है ।।२।।

[३]

सर्वस्योत्कर्षदायी भव सततमये नीचनीचः स्वयं स्या
एवं वृत्त्यैव धीमन्नधिवस मधुरं धाम वृन्दावनाख्यम् ।
तुल्यौ मानावमानौ कुरु भज समतां स्तोत्रदुर्वाच्यकोट्यो–
र्ग्रासालाभे महासम्पदि च भव समो द्विट्सुहृत्तुल्यभावः ॥

अरे ! सबको बड़ाई दे एवं स्वयं सदा नीचातिनीच होकर रह। हे बुद्धिमान् ! इस भाव से श्रीवृन्दावन-नामक श्रीधाम में वासकर। मान और अपमान को समान जान, प्रशंसा एवं कोटि दुर्वचनों को एक समान समझ, भोजन की अप्राप्ति तथा महासम्पत्ति की प्राप्ति में तथा शत्रु और मित्र में समान भावना युक्त हो ।।३।।

[४]

कान्त-त्वङ् मात्र-संच्छादित-विकृतनम-स्त्रीमयामेध्यपिण्डं
थुत्कुर्वर्थाननर्थान् विमृश सुतसुहृद्बान्धवान् विद्धि बन्धान् ।
कष्टं मिष्टान्नपानादिषु भज वसनाद्युज्ज्वलत्वे त्रपेथाः –
सर्वेषां शिष्य-भृत्यादिवदतिविनतोऽध्यास्स्व वृन्दावनं भोः ॥

सुन्दर त्वचा द्वारा ही केवल आच्छादित विकृततम स्त्रीरूप अपवित्र देह पिण्ड को थुत्कार दे, अर्थ को (धन को) अनर्थरूप तथा पुत्र, सुहृद और बान्धवों को बन्धनरूप जान। मिष्टान्नादि खाने में कष्ट मान, उज्ज्वल वस्त्रादिक से तुम्हारा शरीर कांप उठे, तथा सब के आगे शिष्य-भृत्यादि की तरह अति विनीत हो कर श्रीवृन्दावन में वास कर ।।४।।

[५]

राधारमणपदाम्बुज-मधुरिमसिन्धोरनन्तपारस्य ।

अनुभवितैकः स परं वृन्दारण्यं भजेत योऽनन्यः ॥

जो अनन्यभाव से श्रीवृन्दावन का भजन करता है, एकमात्र वही श्रीराधारमण के चरण-कमलों के अपार माधुर्य-सिन्धु का अनुभव प्राप्त कर सकता है ॥५॥

[६]

वृन्दावनगुणकीर्त्तिं प्रतिरसना मे नरीनर्त्ति ।

परिजरिहर्त्ति न यज्ज्ञः सकलोपरि यद्वरीवर्त्ति ॥

श्रीवृन्दावन की गुणकीर्त्ति गान करने में मेरी रसना नृत्य करती रहे । यह श्रीधाम सबसे ऊपर विराजमान है । इस बात को जाननेवाला व्यक्ति इस श्रीवृन्दावन को कभी भी नहीं त्याग कर सकता ॥६॥

[७]

वृन्दावनविधुरास्तामास्तां वृन्दावनेश्वरी तस्याः ।

सन्तु च सख्यो वृन्दावनैकतरुपल्लवोऽपि मोहयति ॥

श्रीवृन्दावनचन्द्र की कथा तो दूर रही, और श्रीवृन्दावनेश्वरी की तथा उनकी सखियों का तो कहना ही क्या है ? श्रीवृन्दावन के एक वृक्ष का एक पत्ता भी समस्त जगत को मुग्ध करनेवाला है ॥७

[८]

रे मन्द मन्दयाखिल-साधनवृन्दानि सान्द्रमानन्दम् ।

वृन्दावनभुवि वृन्दारक-वृन्दानां च दुर्लभं विन्द ॥

हे मन्दमति ! समस्त साधनों को मन्द जानकर त्याग दे, इस श्रीवृन्दावन में देवताओं को भी दुर्लभ सान्द्रानन्द की प्राप्ति कर ॥८

[९]

माकुरुकर्म न योगं न विष्णुभजनं न वा श्रवणम् ।
ध्रुवमवाप्स्यसि परपदं वृन्दारण्ये यथा तथा तिष्ठन् ॥

कर्म, योग एवं विष्णु-भजन मत कर, इनकी बात भी न सुन; श्रीवृन्दावन में जैसे कैसे वास करने से ही तू परमपद को निश्चित्-रूप से प्राप्त करलेगा ॥९॥

[१०]

सत्कर्माणि कृतानि श्रीहरिवाराधितः श्रुतोपनिषत् ।
आमृति वृन्दारण्ये यदैव सङ्कल्पितोवासः ॥

"मृत्यु पर्यन्त श्रीवृन्दावन-वास करूंगा" यह सङ्कल्प करते ही तुम्हारे समस्त सत्कर्म हो गए, श्रीहरि की आराधना भी हो गई और उपनिषदों का श्रवण भी होगया ॥१०॥

[११]

सन्तु विधर्माः शतशः सद्धर्मा यान्तु सर्वेऽस्तम् ।
यदि वृन्दावनमङ्गी कुरुते मम का तदा चिन्ता ॥

शत-शत विधर्म होते रहें एवं समस्त सद्धर्म लुप्त होजायें, यदि श्रीवृन्दावन मुझे अङ्गीकार करले, तो मुझे फिर क्या चिन्ता है?॥११

[१२]

आशा व्यधायि वृन्दाविपिने वासाय यत्नोऽधायि ।
यदि मंदधीर्वहिः स्यां वृन्दाविपिनं कृपालु पालयेत्तदपि ॥

श्रीवृन्दावन में वास करने के लिए तुमने आशा भी की है, और चेष्टा भी की है, यदि मन्द बुद्धिवश तुम बाहिर भी चले जाओ तो भी दयालु श्रीवृन्दावन तुम्हारी रक्षा करेगा ही ॥१२॥

[१३]

श्रीवृन्दावनशोभा वर्द्धित लोभापि राधिकाबन्धोः ।
अनिरुप्यमाधुरीणां परमधुरीणा मनो हरति ॥

अनुपम माधुर्य-राशि के परम माधुर्य को धारण करने वाली श्रीराधिकाजी श्रीवृन्दावन की शोभा में अति लोलुप होकर अपने जीवन (श्रीश्यामसुन्दर) का मन हरण कर रही हैं ॥१३॥

[१४]

आनन्दापर सीमा, सीमा च सौभाग्यरससारस्य ।
हरि मधुरिमान्त्यसीमा, वृन्दावनमेव सेव्यगुणसीमा ॥

आनन्द की सीमा, सौभाग्य रस–सार की सीमा, श्रीहरि के माधुर्य की शेष–सीमा और सेव्य गुणों की सीमा—श्रीवृन्दावन ही है ॥१४॥

[१५]

विचारितानि शास्त्राणि गुरवः पर्य्युपासिताः ।
स्वयं समीक्षितं भूयः सारं वृन्दावनं परम् ॥

शास्त्रों का विचार भी किया है एवं गुरुगणों की सेवा भी करली है, मैं तो किन्तु बार-बार यही देखता हूँ कि श्रीवृन्दावन ही सारवस्तु है ॥१५॥

[१६]

सखे ! सखेदो भवसि किमर्थं व्यर्थजल्पितैः ।
वृन्दावनगुणानेव शृणूपदिश गाय च ॥

हे सखे ! व्यर्थ बकवाद करते करते क्यों खेद को प्राप्त होता है ? श्रीवृन्दावन के गुणसमूह श्रवणकर, उपदेशकर एवं गानकर ॥१६

[१७]

किं ताम्यसि वृथा चिन्तासहस्रैर्लौकिधर्मगैः ।
श्रीमद्वृन्दावने देहमिमं न्यस्य सुखी भव ॥

लोकधर्म विषयक वृथा सहस्र चिन्ताओं में क्यों दुखी हो रहे हो ? श्रीमद्वृन्दावन में इस शरीर को रख कर (बसा कर) सुखी हो ॥१७॥

[१८]

अलं कस्यापि सङ्गत्या तवालं शास्त्रकर्मभिः ।
वृन्दारण्यतृणम्मन्यो धन्यो न किञ्चिदाचरेत् ॥

तुम्हें किसी का सङ्ग करने की आवश्यकता नहीं एवं शास्त्रोक्त कर्मों का भी कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि जिन्होंने अपने को श्रीवृन्दावन के तृण समान समझ कर कृतार्थ जान लिया है, उनके लिए कुछ भी करना शेष नहीं है।।१८।।

[१९]

नेत्रे उत्पाटयत सपदि स्त्रीक्षणे लालसा चेत् ।
पादौ संचूर्णयत शिलया चेद्वहिः स्याद्यियासा ॥
सद्यः प्राणांस्त्यजतु वलिभिर्नेतुमारभ्यते चेत् ।
बध्वा देहो वहिरकपटाऽऽशास्ति वृन्दावने चेत् ॥

यदि तुम्हें स्त्री-दर्शन की लालसा उठती है तो दोनों नेत्रों को निकाल दे एवं यदि श्रीवृन्दावन से बाहिर जाने की इच्छा होती है तो दोनों चरणों को पत्थर से चूर्ण कर डाल । यदि श्रीवृन्दावन में वास करने की आशा है तो कभी बलवान् पुरुष तुम्हारे इस देह को बांध कर बाहिर ले जावें, तू तत्क्षण प्राणों को त्याग देना ।।१९।।

[२०]

यः कुर्य्याद्गुरुतल्पकोटिगमनं हन्याच्च विप्रार्बुदं
स्वर्णञ्चापि हरेत् पिवेच्च मदिरां संसर्गवान् तादृशैः ।
अन्योच्चोद्भट-गोवधाद्यघचयं कुर्वीत सोऽप्यामृति
श्रीवृन्दावनवास–निश्चय–सुनिर्वाही महाधार्मिकः ॥

जो गुरु–पत्नि के पास कोटिबार गमन करता है, अर्बुद विप्र पत्नियों से भी सङ्ग करता है, चाहे सोने की चोरी और मद्य-पान करता है, वा ऐसे करनेवाले पुरुषों के सङ्ग रहता है, वा

दूसरे उद्भट गोवधादि जनित महा-महा पापों को भी करता रहता है, तथापि यदि वह मरण पर्यन्त श्रीवृन्दावन-वास का निश्चय कर उसका अच्छी प्रकार पालन करता है, तो वही महा धार्मिक पुरुष है ॥२०॥

[२१]

धर्म्माख्यामपि नैव वेत्ति सकलाधर्म्मैर्निगीर्णोऽसक्त –
च्चाण्डालैरपि धिक्कृतः कुचरितान्म्लेच्छैरपि न्यक्कृतः ।
अत्युच्छृङ्खलया निजोरुकृपया क्षान्त्या च वृन्दावनं –
स्वस्मिन्नामृति चेद्ददाति वसतिं धन्योऽस्ति वृन्दावने ॥

धर्म की वार्त्ता तक जो नहीं जानता और जिसे सब अधर्मों ने ग्रस रखा है, चण्डाल भी जिसे अनेकबार धिक्कार करते हैं, खोटे कर्मों के करने से जिसे म्लेच्छों ने भी वहिष्कृत किया है। इस प्रकार के मनुष्य को भी यदि श्रीवृन्दावन अपनी असीम कृपा से क्षमा करते हुए मरण पर्य्यन्त वास प्रदान करे, तो उसके समान धन्य और कोई नहीं है ॥२१॥

[२२]

धर्म्माधर्म्मविवेकशून्यमसतां गोष्ठीषु सक्तं सदा –
कामक्रोधमदादिभिः प्रतिपदं निष्पिष्यमाणं बलात् ।
नैव-द्वन्द्वतितिक्षमीषदपि मां चेत् सक्षमा सत्कृपौ –
दार्यात्त्वं जननीव रक्षसि तदा नन्दामि वृन्दाटवी ॥

हे वृन्दावन ! मुझे धर्माधर्म का विचार नहीं है, सदा दुर्जनों के सङ्ग में आसक्त रहता हूँ, काम, क्रोध, मदादि प्रतिक्षण वल-पूर्वक मुझे निष्पेषण कर रहे हैं, सर्दी-गर्मी, मान-अपमानादि द्वन्द ज़रा भी मैं सहन नहीं कर सकता हूँ। मुझ पर यदि कृपा कर अपनी उदारता से क्षमा-शीला जननी की भाँति मेरी रक्षा करो, तो मुझे आनन्द प्राप्त होगा ॥२२॥

[२३]

इदमपि भविता किं राधिका-कृष्ण-नित्यो–
न्मद-मदनविनोद-व्यञ्जि-कुञ्जावलीषु ।
अहनि निशि च वृन्दाकानने सञ्चरामि
प्रतिपदमतिभावोद्भिन्न रोमाश्रुधारः ॥

श्रीराधा-कृष्ण को नित्य उन्मत्त करनेवाले एवं मदन-विनोद प्रदान करनेवाले कुञ्जों में दिनरात परम भावपूर्वक अतिशय पुलकित होकर एवं अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए श्रीवृन्दावन के प्रति स्थल पर विचरण करूँ ; अहो ! ऐसा भाग्य मेरा कब उदय होगा ? ।।२३।।

[२४]

कदा वा कालिन्दीपुलिन–नवकुञ्जेषु कनको –
ज्ज्वलं ज्योतिः कैशोरक-सहजमुन्मादि-मदनम् ।
सदा खेलत् केनाप्यतुल–हरिनीलाभ्रवपुषा
किशोरेणात्युच्चै र्मधुर परिपाट्या हृदि भजे ॥

कालिन्दी पुलिन के नवकुञ्जों में सहजकिशोर अवस्थायुक्त मदनोन्मत्त कोई एक सुवर्णवर्ण ज्योति (श्रीराधा जी) किसी एक अतुलनीय इन्द्रमणि तथा मेघवर्ण किशोर (श्रीकृष्ण) के सहित अतिमधुर परिपाटी से नित्य क्रीड़ा कर रही है, मैं कब उनका हृदय-मन्दिर में भजन करूंगा ? ।।२४।।

[२५]

अद्वैतब्रह्मसज्ज्योतिषि जयति महानन्द–सज्ज्योतिरैशं
तस्मिन् स्वाद्यैक रत्यात्मक–मधुर–महाज्ज्योतिरेकं चकास्ति ।
श्रीमद्वृन्दावनं तद्घनमिह तदधि–श्यामलेनास्ति राधा
नित्यक्रीडा–किशोरी स्मर मधुरतरं तत्पदद्वन्द्वरोचिः ॥

अद्वैत ब्रह्ममय ज्योति में ऐश महानन्द की सुन्दर ज्योति जययुक्त होरही है, उसके अन्दर और फिर महास्वादनीय मुख्य रत्यात्मक मधुर एक महाज्योति शोभित हो रही है। उसकी ही घनमूर्त्ति श्रीवृन्दावन की अधिष्ठात्री नित्य-क्रीड़ाकिशोरी श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दर के साथ विराजमाना हैं, उनके ही चरणकमलों की मधुरतर ज्योति का स्मरण कर ॥२५॥

[२६]

तद्दासीयूथ एतत्सुघन ऊरुभिदाश्चर्यवर्णाकृतिस्रग् –
वस्त्रालङ्कार–तत्तद्रसललितकलापारचातुर्यवृन्दे ।
सर्वाश्चर्यातिनूत्नोत्तम–वयसि महाश्चर्यलावण्यलास्ये
श्रीराधाकृष्णसेवा-सुखभर-सततोत्फुल्लवल्गुस्मितास्ये ॥

श्रीराधाकृष्ण के लिये विभिन्न आश्चर्यवर्ण तथा आश्चर्याकृति माला, वस्त्र, अलङ्कारादि सामग्री रचना करने में प्रत्येक विषय में ही रसमय ललित-कला की अपार चातुरी प्रदर्शन करनेवाली, तथा सर्वाश्चर्य्यजनक अति नवीन सुन्दर अवस्थायुक्त, महाश्चर्यमय लावण्यपूर्ण लास्ययुक्त, तथा श्रीराधा-कृष्ण के सेवा सुख में निरंतर मृदुमुस्कान से प्रफुल्लित-वदनी श्रीराधाजी के चरण-कमलों की कान्ति की सुघनमूर्त्तिमयी दासियोंका यूथ शोभित होरहा है ॥२६॥

[२७]

स्वां मूर्त्तिं दिव्यकैशोरक–ललित–नवस्वर्णवल्ली-मनोज्ञा –
मानील–स्निग्धवेणीकृतचिकुरशिखा–लोलसद्रत्नगुच्छाम् ।
श्रीमन्नासापुटोद्यत् कनकमणि–समासक्तदिव्यैकमुक्तां
सम्पूर्णस्वर्णचन्द्रच्छविमुखकमलामोद–माधुर्यधाराम् ॥

(उस यूथ में) दिव्य किशोर ललित नव स्वर्णवत् मनोज्ञा स्वीयमूर्त्ति हैं, जिनके गाढ़ नीलवर्ण स्निग्ध वेणी के अग्रभागों में सुन्दर

रत्नगुच्छ लटक रहे हैं, सुन्दर नासापुट में कनकमणि खचित दिव्य मुक्ताशोभित हैं। स्वर्णकान्तिमय पूर्णचन्द्र द्युति के समान मुख-कमल की सुगंधि का माधुर्य प्रवाहित होरहा है ॥२७॥

[२८]

संवीत-स्वर्णपद्माद्भुत-मुकुल-मनोहारि-वक्षोजयुग्मा –
मत्यन्तक्षीणमध्यां नवपृथुल–महासुन्दर–श्रीनितम्बाम् ।
काञ्चीमञ्जीर–हारावलि–वलयघटा–हेमकेयूररम्यां
दिव्यं सूक्ष्मं निचोलं शिरसि कटितटे चित्रशाटीं दधानाम् ॥

आवृत स्वर्णकमल के अद्भुत मुकुलवत् मनोहर युगलस्तनों से वे शोभित होरही हैं, उनका मध्यदेश (कटि) अति क्षीण है। उनके अति सुन्दर नवीन स्थूल नितम्ब हैं, काञ्ची, मञ्जीर, मुक्तामाला, वलयादि व सुवर्ण कुण्डलों से शोभिता हैं, शिर पर दिव्य सूक्ष्म ओढ़नी और परिधान में विचित्र साड़ी धारण कर रही हैं ॥२८॥

[२९]

एकैकाङ्गच्छटाच्छादित-सकलदिशं दिव्यताटङ्ककर्णां
कर्णोर्द्ध्वं चातिचित्रोज्ज्वलकनकमयं कर्णपूरं वहन्तीम् ।
उन्मीलद्यौवनश्रीमधुर-मद-महाश्चर्य-लावण्यलास्यां
राधाकृष्णानुरागात्यवश-सपुलकोदश्रु-गौराङ्गवल्लीम् ॥

वे अपने प्रति अङ्ग की छटा से दशों-दिशाओं को आच्छादन कर रही हैं, कानों में दिव्य ताटङ्क (वाली) और उनके ऊपर विचित्र उज्ज्वल स्वर्णमय अवतंश धारण कर रही हैं। उन्मेषित यौवन शोभा से मधुर मदयुक्त महाश्चर्य लावण्यता से पूर्ण हैं, श्रीराधा-कृष्ण के परमअनुरागवश अवश ह रही हैं, पुलकित एवं अश्रुओं से सिञ्चित गौरवर्ण लताओं के समान प्रतीत होती हैं ॥२९

[३०]

सर्वावस्थासु नित्यं स्मर सकल-कलापारगां नर्म्मनिर्मि-
त्यन्ताश्चर्यचातुर्यतिरमित-निजप्राणसर्वस्वयुग्माम् ।
सान्द्रानन्दैक-साराम्बुधि-रसबुडितां घोरघोरापदाम -
प्याक्रान्तौ हन्त नाहं मम-कृतिरिह ते गेहदेहादिकेऽस्तु ॥

वे समस्त कलाओं में निपुणा हैं, एवं परिहास निर्माण करके और अति आश्चर्य्यजनक चातुरी द्वारा अपने प्राणसर्वस्व युगल-किशोर को अतिशय आनन्द दे रही हैं, तथा सान्द्रानन्द के एक-मात्र सारमय समुद्र-रस में निमग्ना उन राधा-दासियों का सब अवस्थाओं में नित्य स्मरण कर। हाय! अतिशय घोरतर आपत्ति में घिर कर भी इस देह एवं गेहादिक में जिससे तुम्हारी "अहं" "मम" बुद्धि न हो ॥३०॥ (यहाँ तक ५ श्लोकों में कुलक है)

[३१]

यद्याद्यां रतिमिच्छसि प्रिय ! परप्रेमोल्लसत्सुन्दरा -
नन्दस्यन्द–महाप्रकर्ष–चरमाश्चर्यावधिं निर्मलाम् ।
श्रीवृन्दावनमेव संश्रय तदा सर्वात्मभावेन त—
च्छुद्धप्रेमरसं किशोरमिथुनं तत्रैव यद्व्यज्यते ॥

हे प्रिय ! परम प्रेम-विलासमय, सुन्दर आनन्द समूह सञ्चारी महा प्रकृष्ट आश्चर्य्य की चरम सीमा, निर्मल आद्य (शृङ्गार) रति को यदि प्राप्त करने की इच्छा है, तो श्रीवृन्दावन को ही हर-प्रकार से सर्वार्पणपूर्वक आश्रय कर ; क्योंकि शुद्ध-प्रेम-रसमय वे श्रीयुगलकिशोर वहाँ ही सर्वोत्कृष्टरूप से प्रकटित हुए हैं ॥३१॥

[३२]

हासं भर्त्सन–ताड़नादिषु सदा कुर्वन् विषादं नहि–
ग्रासस्याप्यनुपस्थितौ व्यवहरंल्लोकेऽतिमुग्धार्भवत् ।

नैष्किञ्चन्य–महाघनो निजगुणानस्थापयन् कर्हिचित्–
सर्वांश्चिद्वपुषो नमन् प्रणयतः सेवस्व वृन्दावने ॥

सर्वदा ताड़ना-भर्त्सनादि में हँसते हुए, एक ग्रास भी अन्न न मिलने पर विषाद रहित होकर, लोगों से अति मूढ़ बालकवत् व्यवहार करते हुए, निष्किञ्चनता को ही परम धन जानते हुए कहीं भी अपने गुणों को प्रकाश न करते हुए एवं श्रीवृन्दावन के सकल चिन्मय विग्रह की प्रेमपूर्वक नमस्कार करते हुए सेवा कर ॥३२॥

[३३]

अन्तर्दृष्टान्तपारोज्झित-विमलसदानन्दसाम्राज्यसान्द्र –
स्वादिष्ट–ज्योतिराद्यप्रणयरसमहाब्ध्युत्थित–द्वीपमध्ये ।
अत्युच्चैर्जाज्वलीति प्रतिनवसुषमा माधुरीणां धुरीणा
श्रीमद्वृन्दाटवी तामधिवस भज च ज्योतिषी गौरनीले ॥

अन्तःकरण में अनुभव किये जाने योग्य जो पारावार रहित विमल नित्यानन्द साम्राज्य है, उसके सारघन अतिशय आस्वादनीय ज्योति के श्रेष्ठ प्रणय-रस समुद्र से उत्थित द्वीप में श्रीमद्वृन्दाटवी नवीन-नवीन सुषमा और माधुर्य्यसार समूह प्रकाश करते हुए अतीव देदीप्यमान हो रही हैं ; उसमें वास कर और उस गौरनील-ज्योतियुक्त श्रीयुगलकिशोर का भजन कर ॥३३॥

[३४]

कदापि न गतं क्वचिन्न च कुतश्चिदप्यागतं
सदा नव–सुयौवनं स्मर–रसैकमग्नं सदा ।
गुणैरसदृशाधिकैर्मधुरिमान्त्यसीमागतं
हिरण्य–हरिनीलरुङ् मिथुनमस्ति वृन्दावने ॥

कभी कहीं जाते नहीं, और कहीं से वे कभी आते नहीं, सदा नव-सुन्दर यौवनयुक्त, सदा काम-रस में मग्न, असमोर्द्ध गुणों

सहित माधुर्य्य की अन्तिम-सीमा को प्राप्त, स्वर्णवर्ण एवं इन्द्रनील-मणि–कान्तिधारी श्रीयुगलकिशोर श्रीवृन्दावन में ही विराज रहे हैं ॥३४॥

[३५]

अनङ्गरससीमनि प्रणयमाधुरीसीमनि
स्फुरत्तरुणिमाङ्कु रद्यु ति-सुरूपता सीमनि।
ससीमानि महाद्भु त-स्मरविलासवैदग्ध्यो–
र्मनोऽस्तु वनसीमनि क्वचिदपि द्वये धामनि ॥

अनङ्गरस-सीमा प्रणय-माधुर्य्य-सीमा, स्फुर्त्तिशील तारुण्यद्युति (श्रीकृष्ण) तथा सुन्दरस्वरूप की सीमा, महाद्भुत कामविलास तथा वैदग्धी की सुसीमारूप (श्रीराधा) इन दोनोंके धाम (गोलोक) में किसी वनप्रान्त (श्रीवृन्दावन) में मेरा मन लगा रहे ॥३५॥

[३६]

राधामाधव-मुग्ध-मन्मथ-कला-सर्वस्व-कोषं सम–
स्तार्थानां कृतमोषमद्भु तयशोघोषं त्रयीमौलिषु।
सर्वस्वाश्रितपोषणव्रतमुपेताशेषदोषक्षमा —
श्रीलं प्रेमरसैकजोषणमहो जागर्ति वृन्दावनम् ॥

अहो ! श्रीराधामाधव के काम-कलास्वरूप सर्वधन का भण्डार; समस्त पुरुषार्थों का प्रधान अवलम्बन स्वरूप ; ऋक्, यजुः एवं सामवेद तथा श्रेष्ठ-गणों में जिसके अद्भुत यश की कीर्ति वर्णन हो रही है; और आश्रय ग्रहण करनेवाले जीवों को सर्वस्वदान करके उनके पालन के व्रतको धारण करनेवाला ; समस्त दोषों को क्षमा करनेवाला, प्रेमरस में प्रीतिशील श्रीवृन्दावन शोभित होरहा है ॥३६

[३७]

यत्रैवाखिलकार्यकारणकथाप्यत्यन्तमस्त गता
यत्रात्मप्रभ-वैभवं न च चिदानन्दात्मकं भात्यहो।

कृष्णप्रेमरसात्म-सर्वविभवैर्माधुर्य्यसारैर्युतं
श्रीवृन्दावननाम धाम तदिदं वर्वर्ति सर्वोपरि ॥

यहाँ अखिल कार्य-कारण की कथा भी अत्यन्त लय को प्राप्त हो गयी है, यहाँ स्वयं प्रभामय वैभव–विशिष्ट–वस्तु वा चिदानन्दात्मक कुछ भी प्रकाशित नहीं होता ; माधुर्य-सार के साथ कृष्णप्रेम-रसात्मक समस्त वैभवयुक्त यह श्रीवृन्दावन–नामक धाम सर्वोपरि विराजमान है ॥३७॥

[३८]

यद्भासा सकलं विभाति चिदचिद द्वैतं यदत्यद्भुत–
प्रेमानन्द महारसैकजलधेर्विन्दोर्लवेन प्रियम् ।
यत्सत्तामनुसत्त्वयोगि-सकलं यन्माधुरीवैभवा–
श्चर्य्याणामणुमात्र पात्रमखिलं वृन्दावनं तन्नुमः ॥

जिसकी प्रभा से चित् एवं जड़ दोनों वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं, जिसके अति अद्भुत प्रेमानन्द महारस समुद्र के विन्दु का लबमात्र ही जगत् का प्रियकर है, जिसकी सत्ता में सब की सत्ता ग्रथित है ; अखिल जगत् जिसके आश्चर्य–माधुर्य व वैभवादि का अणुमात्र पात्र है, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३८॥

[३९]

आश्चर्यानन्तशक्तिश्रित–पदकमलच्छाययाश्चर्यलीला–
माधुर्यौघैः समाप्लावित-निज-सुमहाभावनिर्भग्नसेतु ।
गौरश्यामं किशोरद्वयमतिमधुरानङ्गरङ्गेण दिव्यं
यत्रानाद्यन्तकालं नयति शरणदा साऽतु वृन्दाटवी मे ॥

आश्चर्यमय अनन्त-शक्तियुक्त चरण-कमलों की छाया द्वारा, आश्चर्यमय लीलामाधुर्य–प्रवाहमय अपने सुन्दर महाभाव के द्वारा, मर्यादा लङ्घनपूर्वक जगत् समाच्छादनकारी अति मधुर अनङ्ग-

रङ्गमय गौरश्याम युगलकिशोर जहाँ अनादि अनन्तकाल पर्यन्त क्रीड़ा करते हैं, वह श्रीवृन्दावन मुझे शरण प्रदान करे ॥३६ ॥

[४०]

रागद्वेषाद्यनर्थं जहि-जहि भगवन्नाम-मात्र-प्रतापाद्
द्वैतं देहादि विस्मारय सकलमथ स्फोरयेस्तर्यतेजः ।
तद्विस्मार्य्याथ सन्दर्शय मधुरमहस्तद्रहस्यञ्च तौ-प-
श्याविष्कृत्याथ वृन्दावनमुपनय मे नागरौ गौरनीलौ ॥

भगवान् के नाममात्र के प्रताप से ही राग-द्वेषादि अनर्थों को त्याग कर, देहादि समस्त द्वैत-विषय भूल जा, फिर तुरीय तेज की स्फूर्ति कर, फिर उसे भूलकर उस तुरीय तेज के मध्यस्थ रहस्यस्थल में अनिर्वचनीय मधुर ज्योति का सन्दर्शन कर एवं उसमें अद्भुत श्रीवृन्दावनधाम का ध्यान करके गौरनील युगलनागर (श्रीराधा-कृष्ण) के साक्षात् दर्शन कर ॥४०॥

[४१]

वीभत्से विषये निरङ्कुशमसावात्मेन्द्रियैर्धावति
क्वाप्याप्नोति सुखस्य गन्धमपि नात्यंधस्तथाप्युन्मदः ।
वाधिर्य्यं गुरु-शास्त्र-मित्र वचनेष्वाश्चर्यमेति श्रुति-
द्वन्द्वं मन्दमतिः कदा नु शरणं विन्दामि वृन्दाटवीम् ॥

वीभत्स विषयों में अबाध गति से इस देह इन्द्रियों सहित मैं दौड़ रहा हूँ ; कहीं भी सुख की गन्धमात्र प्राप्त नहीं होती ; अति-शय अन्धा होकर भी मैं अति उन्मत्त हो रहा हूँ। आश्चर्य यह है कि गुरु, शास्त्र, मित्रों के वचनों को सुनने में मेरे दोनों कान बधिर हो रहे हैं ; हाय ! मन्दमति मुझको कब श्रीवृन्दावन प्राप्त होगा ?४१

[४२]

दुखैर्घोरतमैर्ध्रुवं परिवृतं यस्यादिमध्यान्तिमं
योऽत्यन्ताशु विनश्वरोऽतिनिरता यत्रापि विट्शूकराः ।

विन्मूत्रादिमलं क्षरत्यविरलं द्वारैर्मुहुर्वीक्ष्यते
तादृग्भोग-महास्पृहं कुविषये मां त्राहि वृन्दाटवि ! ॥

घोरतम दुःख से ही जिसका आदि, मध्य एवं अन्त परिवेष्टित है, जो अति शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा, जिसके लिये विष्ठाभोगी शूकर अतिशय आशा लगाये हुए हैं, जिसके द्वारों से मल–मूत्रादि क्लेद निरन्तर निकल रहे हैं, हाय ! यह सब बार–बार देखते हुए भी मैं कुविषयों को भोग करने के लिये महास्पृहावान् हो रहा हूँ ; हे वृन्दावन ! मेरी रक्षा कीजिये ॥४२॥

[४३]

प्रेम्णा वृन्दावनस्य त्यजति यदि जनो मादृशः सर्वधर्मान्
निर्म्मात्येवापराधान् यदि तु भगवतो दुर्निवारेन्द्रियौघः ।
तेन स्याद्वासविघ्नो यदि भवतुतरां कृष्णसत्प्रेमसीम
श्रीमद्वृन्दावनं मां किमु निजकृपया नाविता यत्र कुत्र ? ॥

श्रीवृन्दावन के प्रेम में यदि मुझसा व्यक्ति सर्व-धर्म त्याग करे, दुर्निवार इन्द्रिय-समूह भी यदि श्रीभगवान् के अपराध–समूह करें, एवं वृन्दावन-वास में यदि विघ्न हो जाय, भले सब कुछ हो जाये ; किन्तु श्रीकृष्ण-प्रेम की चरम–सीमा को प्राप्त जो यह श्रीवृन्दावन है, क्या जहाँ तहाँ मेरी रक्षा नहीं करेगा ? ॥४३॥

[४४]

केचित् कुर्वन्ति विष्णोर्भजनमनुदिनं केचन ध्यानयोगा–
द्यन्ये कर्माणि केचिद्धन-सुत-वनिताद्येषु नित्यं सजन्ति ।
श्रीराधाकृष्ण-नित्योन्मद–सुरतकला-रञ्जितोदारकुञ्जे
प्रेम्णैकान्तेन वृन्दाविपिनमधिवसंस्तेषु कोऽहं न जाने ॥

श्रीराधा-कृष्ण को नित्य उन्मत्त करनेवाली सुरत–कलाओं से रञ्जित उदार-कुञ्ज में कोई-कोई प्रतिदिन विष्णु का भजन करते हैं,

कोई-कोई ध्यान योगादि का अनुष्ठान करते हैं, कोई-कोई यज्ञादि कर्मों को करते हैं और कोई धन, पुत्र, स्त्री आदिकों में ही एकान्त आसक्त हो रहे हैं, किन्तु उनमें कौनसा भाग्यवान् एकान्त प्रेमपूर्वक श्रीवृन्दावन-वास करता है, उसे मैं नहीं जानता ।।४४।।

[४५]

निस्त्रैगुण्यं स्फुरति किमपि ज्योतिरानन्दसान्द्रं
तस्यात्यन्तः–प्रणयविभवं ज्योतिराभाति कार्ष्णम् ।
तस्याप्यन्तर्मधुरमधुरं ज्योतिरस्त्यत्र वृन्दा–
रण्यं तस्मिन् भज रसखनी गौरनीलौ किशोरौ ॥

सत्-रज्-तम्-गुणों से परे कोई सान्द्रानन्द, ज्योति स्फुरण हो रही है, उससे बहुत परे प्रणय-विभवमय कृष्णवर्ण-ज्योति प्रतिभात हो रही है, उसके भीतर मधुर से भी सुमधुर श्रीवृन्दावनीय-ज्योति विद्यमान है, उसमें विराजमान रसखानि गौर-नील श्रीयुगलकिशोर का भजन कर ।।४५।।

[४६]

निन्द्यात्मोचितनिन्दने हि न मनाङ्म्लानोऽपराध्यात्मनो
दण्डेऽकाकुपरोऽवजानति परे मत्वाधमं स्वं स्थिरम् ।
दूराद्दुर्गतवत् स्थितोऽखिलजनस्यानुग्रहार्थी सदा
हीनोऽहं श्व-श्रृगालवत् सुखघने स्थास्यामि वृन्दावने ॥

मेरा निन्दायोग्यस्वभाव होने से तदुचित्त निन्दा होने में ज़रा भी मलीन चित्त न होकर, अपराधी शरीर को दण्ड होने पर दुखी न होकर, किसी के द्वारा अवज्ञा होने पर अपना ही कोई पाप जानकर, दूरसे ही दुर्गवत् रह कर नित्य सब की कृपा की प्रार्थना करते हुए, श्वान एवं शृगालकी भाँति हीन होकर मैं श्रीवृन्दावन-वास करूँगा ।।४६।।

[४७]

घोरामापदमत्र सम्पदमिवावज्ञाञ्च सन्मानव-
न्निन्दां संस्तववत् सखीनिव रिपूनैःस्वं महामूर्तिवत् ।
मात्सर्याणि सुमित्रतामिव हृदा गृह्णन्महादुर्लभ-
श्रीराधामुरलीधराङ्घ्रिरसदे स्थाताऽस्मि वृन्दावने ॥

यहाँ घोर आपदा को सम्पदा के समान, अवज्ञाको सन्मानवत्, निन्दा को स्तुति के समान, बान्धवोंको रिपुतुल्य, निःस्व अवस्थाको महामूर्त्तिधारीवत् एवं अपने विषे दूसरे के मात्सर्य को सुमित्रता के समान, हृदय में धारण करके श्रीराधा-मुरलीधर के चरण-कमलों में महादुर्लभ रसप्रदान करनेवाले श्रीवृन्दावन में मैं वास करूँगा ॥४७

[४८]

श्रीवृन्दावनवन्दनाय सततं मूर्द्धास्तु बद्धादरो
जिह्वा विह्वलतामुपैतु सततं तत्सद्गुणोत्कीर्तने ।
हस्तौ तन्नवकुञ्जमार्जनविधौ पादौ च तत्राटने
श्रोत्रे तन्महिमश्रुतौ दृशि-दृशौ नित्यं स्मृतौ स्तान्मनः ॥

मेरा मस्तक अति आदर सहित नित्य ही श्रीवृन्दावन की वन्दना करे, जिह्वा उसके सद्गुणों को उच्च कीर्त्तन करने में विह्वल रहे, उसकी नव-कुञ्जों को मार्जन करने के लिये दोनों हाथ, तथा श्रीवृन्दावन की परिक्रमा करने के लिये पाँव, उसकी महिमा सुनने में कान, उसके दर्शन करने में नेत्र तथा उसके स्मरण करने में मेरा मन नित्य ही लगा रहे ॥४८॥

[४९]

समस्तसुभगाद्भुतं सकलमङ्गलात्यद्भुतं
चिदात्मसकलोज्ज्वलाद्भुतमशेषरस्याद्भुतम् ।
समस्तवरदाद्भुतं सकलकृष्णधामाद्भुतं
तदेतदखिलाद्भुतं भज रसेन वृन्दावनम् ॥

समस्त सौभाग्यों से अद्भुत, सब मङ्गलों से अद्भुत, चिन्मय समस्त वस्तुओं से अद्भुत, सकल रमणीयता से अद्भुत, समस्त वरदानों से अद्भुत एवं समस्त श्रीकृष्ण-धामों से अद्भुत, यहाँ का समस्त ही अद्भुत है अतः इस श्रीवृन्दावन का भाव-सहित भजन कर ॥४६॥

[५०]

कलिन्दसुतया युतं प्रणयमाधुरीधारया
प्रवृद्धसुखचन्द्रिका-जलधि फुल्लवल्लीद्रुमम् ।
कपोत-शुक-शारिका-पिक-मयूरकालङ्कृतं
भ्रमद्-भ्रमरझङ्कृतं जयति धाम वृन्दावनम् ॥

प्रणय-माधुरी की धारा प्रवाहित करनेवाली कालिन्दी के द्वारा शोभित ; सुख-चन्द्रिका-समुद्र की वृद्धि करनेवाले प्रफुल्लित लता-वृक्षादिकों से वेष्टित ; कपोत, शुक, शारिका, कोकिला तथा मोरों से अलङ्कृत ; इधर उधर भ्रमणशील भ्रमरों की झन्कार से निनादित श्रीधामवृन्दावन की जय हो ॥५०॥

[५१]

महाज्योत्स्नारूपैः परम-परमानन्द-सुघनै-
र्महामाधुर्याणामिव परमसारेण घटितैः ।
परीणामैः प्रेम्णामिव नवनवाश्चर्य-कुसुमा-
द्युपेतैः शाखीन्द्रैः स्मर सुभगवृन्दावनवनम् ॥

अति परमानन्द सुघन महाज्योत्स्नारूप विस्तारकारी, महा-माधुर्यराशि के परमसार द्वारा मानो निर्मित, प्रेम-समूह के परिपाक में ही मानो नव-नव आश्चर्य-कुसुमादिकयुक्त वृक्षों से शोभित सुन्दर तुलसीवनों-युक्त श्रीवृन्दवन का स्मरण कर ॥५१॥

[५२]

कृष्णप्रेमरसं सदा रसयते वृन्दावनान्तर्गतं
चेतः स्थास्नु चरिष्णु चिद्घन-महोरूपं तवापीदृशम् ।
एवञ्चेन्न हि भाति सद्गुरुमुखाच्छ्रुत्वा सदा चिन्तय–
न्नारब्धान्तमिहावसातिसहसा स्वादिष्यसे स्वं रसम् ॥

श्रीवृन्दावन में रहनेवाले व्यक्ति का मन सदा ही श्रीकृष्ण-प्रेम-रस का आस्वादन करता है ; यहाँ की स्थावर-जङ्गम समस्त वस्तुएँ चिद्घन-ज्योति स्वरूप हैं ; तुम्हारा भी यही स्वरूप है, इसप्रकार यदि तुम्हें प्रतिभात नहीं भी होता, तो सद्गुरु के मुख से इसविषय को श्रवण कर के निरन्तर चिन्ता कर एवं प्रारब्ध के शेष पर्य्यन्त यहाँ वास कर, तभी सहसा अपने आप इस रस का आस्वादन कर पायेगा ॥५२॥

[५३]

निरस्तत्रैगुण्यं हरिरसदपुण्यं स्वकृपया
धरण्यान्तर्भातं विमलपरमानन्द-सुघनम् ।
इदं वृन्दारण्यं वहदतुल–माधुर्य्य-सुषमा
महारण्यं धन्यः श्रयति बहुमान्यस्त्रिजगताम् ॥

सत्–रज्–तम् गुणों से परे, हरि-रसदायी, पुण्यजनक, निज कृपा से पृथिवी पर प्रकटित, एवं विमल परमानन्द सुघन-स्वरूप इस अतुलनीय महामाधुर्य्य-सुखसार-महारण्य सदृश श्रीवृन्दावन का जो भाग्यवान् व्यक्ति आश्रय करते हैं, वही त्रिभुवन में मान्यता को प्राप्त होते हैं ॥५३॥

[५४]

सान्द्रानन्दाब्धिमध्ये लसति रसमयं चिन्मणिद्वीपमेकं
वृन्दारण्यं तदन्तः स्फुरति पुरु-चमत्कारि वैचित्र्यधाम ।

तत्रैवैकान्तरत्या निवस ननु सखे क्वापि कुर्या न खेदं
वेदान्तानां सुदूरं किमपि हरिजनालभ्यमप्यत्र लभ्यम् ॥

सान्द्रानन्द-समुद्र में एक अति रसमय मणिद्वीप शोभित होरहा है, उसके अन्दर अति चमत्कारकारि वैचित्र्य-धाम श्रीवृन्दावन विराजित है, हे सखे ! इसी स्थान पर एकान्त-भाव से वास कर, और कुछ खेद नहीं करना, क्योंकि वेदान्तियों से बहुत दूर रहने वाली तथा हरि-भक्तों को भी अलभ्य कोई एक अनिर्वचनीय वस्तु यहाँ मिलती है ॥५४॥

[५५]

शाश्वन्न्यस्तं वपुषि परमप्रेमहृष्टालिवृन्दै-
स्त्रोटं त्रोटं मिथ उरुमदान्माल्य-हाराम्बरादि ।
अत्युद्वेल-स्मरजलनिधी हासयन्तौ मुहुस्ता
वृन्दारण्ये स्मर रतिकलानागरौ तौ किशोरौ ॥

एक दूसरे के परम आनन्द में माला-हार-वस्त्रादि टूट जाने पर प्रिय प्रीतम को परम हर्षयुक्त सखीवृन्द पुनः पुनः उन्हें धारण कराती हैं । अति असीम काम-समुद्र युगलकिशोर बारबार सखीगणों से हास्य करते हैं, श्रीवृन्दावन में इन रतिकला-नागर श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर ॥५५॥

[५६]

उच्चावचाविगणित - ब्रह्माण्डावलि - मण्डिताम् ।
त्रिगुणां प्रकृतिं तीर्त्वा जड़दुखानृतात्मिकाम् ॥

[५७]

अपारावार - विस्तारमेकमानन्द - सागरम् ।
स्वप्रकाश - महास्वच्छ - ज्योतिरूपं परंपदम् ॥

अनेक प्रकार अगण्य ब्रह्माण्ड समूहयुक्त जड़-दुख-मिथ्या स्वभाव वाली त्रिगुणमयी प्रकृति को उत्तीर्ण होकर पारावार-विहीन विस्तृत एक कामानन्द सागर प्रकाशित होरहा है, वह स्व-प्रकाश है, महास्वच्छ ज्योतिस्वरूप एवं अति उत्कृष्ट स्थान है।।५६-५७

[५८]

चैतन्यमात्र-निर्भासं निस्तरङ्गं निराकुलम् ।
निरस्ताज्ञान-तत्कार्यं परं ब्रह्मेति यद्विदुः ॥

चैतन्य-सत्ता से आलोकित, तरङ्गहीन, चञ्चलता - हीन, अज्ञान एवं अज्ञान के कार्य से जो रहित है, पण्डितगण उसे 'परम ब्रह्म' कहते हैं ।।५८।।

[५६]

तदन्तः परमाश्चर्यं ज्योतिरैशं विचिन्तय ।
चर्वणीय-महानन्द-सान्द्राब्धिमतिनिर्मलम् ॥

उससे परे परमाश्चर्यमय ईश्वर-ज्योति की चिन्ता कर, वह अति आस्वादनीय एवं निर्मल महानन्दघन समुद्र स्वरूप है ।।५६।।

[६०]

महा-सुविस्तीर्णतमं महोज्ज्वलतमं परम् ।
लोकादिभिर्घनीभावैर्महितं महदद्भुतम् ॥

वह महा सुविस्तीर्णतम, परम महा उज्ज्वलतम, महाद्भुत है एवं घनसन्निविष्ट लोक समूह भी उसकी स्तुति करते हैं ।।६०।।

[६१]

तदन्तरे ततोऽप्यत्याश्चर्यं ज्योतिरनुस्मर !
कार्ष्ण्यं महास्वच्छतमं पारावार-विवर्जितम् ॥

उसके परे उससे भी अधिक आश्चर्यजनक ज्योति का अनुस्मरण कर, वह कृष्ण-वर्ण, महा स्वच्छतम एवं पारावार विहीन है ।।६१।।

[६२]

महादीप्तं महारम्यं महामोहनमद्भुतम् ।
महाप्रेमातिसौंदर्यं महानन्दरसोत्सवम् ॥

वह महोदीप्त, महारमणीय, महामोहन, महाद्भुत, महा प्रेममय अति सुन्दर, महानन्दमय रसोत्सव पूर्ण हैं ॥६२॥

[६३]

ततो दूरान्तरे ज्योतिः सर्वाश्चर्यौघतावधि ।
सर्वोज्ज्वलाति-सुमहोज्वलं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥

उससे भी बहुत दूर सर्वाश्चर्य की चरम परिणति-स्वरूप जो ज्योति है, वह प्रकाशित हो रही है, वह सर्वोज्ज्वल वस्तुओं को भी महा उज्ज्वलता विधान करनेवाली है एवं सर्वोत्तम है ॥६३॥

[६४]

महावैमल्यसीमान्तः परानन्द-परावधिः ।
कृष्णप्रेमरसर्धीनां चरमः परमोदयः ॥

वह महा निर्मलता की शेष सीमा है, परमानन्द की शेष-सीमा है, कृष्ण-प्रेम रस-सम्पत्ति-समूह का यहां ही चरम उदय है ॥६४॥

[६५]

कामान्यरसमात्रे यत् स्पर्शनित्यविवर्जितम् ।
महाशुद्ध-कामवीज-राजात्मात्युन्मदं रसम् ॥

वह नित्य-काम के सिवाय अन्य रसों के लव-लेश स्पर्श से भी रहित है, एवं महाशुद्ध कामबीज-राजात्मक अत्युन्मद रसमय है॥६५

[६६]

तदन्तस्तद्वनं भाति श्रीवृन्दावनं वनम् ।
पूर्णमाधुर्यसाम्राज्यं पूर्णानन्द चमत्कृति ।

उसके बीच फिर श्रीमद्वृन्दावनीय वन घन-भाव से प्रतिभात हो रहा है, वह पूर्ण माधुर्य का साम्राज्य है एवं पूर्ण चमत्कार-दायी है ॥६६॥

[६७]

पूर्णातिपूर्णमधुर-प्रकाशं पूर्णसद्रसम् ।
सर्वसौभाग्य पूर्णं-द्रु-लता-खग-मृगादिकम् ॥

वह (श्रीवृन्दावन) पूर्णातिपूर्ण मधुर प्रकाशमय है, पूर्ण रस-युक्त एवं सर्व सौभाग्य पूर्ण वृक्ष-लता, पक्षी-पशु आदिकों से शोभित है ॥६७॥

[६८]

वापी-कूप-तड़ागाद्यैः प्रेमानन्द रसात्मभिः ।
चिन्तामणिमयैर्दिव्यैः केलिशैलैः स्वलङ्कृतम् ॥

वह प्रेमानन्द रस-विशिष्ट वापी, कूप, तड़ागादिकों द्वारा शोभित है, एवं चिन्तामणि समूहयुक्त दिव्य-दिव्य केलि-पर्वतादिकों के द्वारा सुन्दर स्वरूप से अलंकृत है ॥६८॥

[६९]

दिव्यकाञ्चन–चिद्रत्न–स्थलीभिरतिभास्वरम् ।
ज्योतिर्मयैर्लतावृक्षैर्नित्योद्यत्पुष्पपल्लवैः ॥

वह दिव्य काञ्चनमय चित्स्वरूप रत्नस्थली द्वारा अतिशय दीप्ती प्रसार कर रहा है, नित्य पुष्प-पल्लवादि युक्त ज्योतिर्मय वृक्ष-लतादि से भूषित है ॥६९॥

[७०]

असंख्यफलवद् वृक्षैरानन्दघनमूर्त्तिभिः ।
खेलत्खगकुलैर्मत्तैः कृतकोलाहलोत्सवम् ॥

वहाँ आनन्दघन-मूर्त्ति असंख्य फलवान् वृक्ष समूह क्रीड़ा-परायण उन्मत्त पक्षियों के कोलाहल उत्सव से मुखरित हैं ॥७०॥

[७१]

इतस्ततो मदान्धालि–माला–मधुर–झङ्कृतम् ।
प्रतिपल्लव – पुष्पोरुधार – स्यन्दि – मरन्दकम् ॥

(श्रीवृन्दावन में) इधर-उधर मदान्ध मधुकर पंक्ति मधुर झङ्कार कर रही है और प्रति पल्लव से, प्रति पुष्प से मधु-धारा प्रवाहित हो रही है ॥७१॥

[७२]

प्रोत्सर्पद्भिः प्रतिदिशं परागपटलैर्युतम् ।
कुञ्जपुञ्जैर्महाश्चर्यैं रसपुञ्जैरिवाद्भुतम् ॥

यह दिशा-विदिशा में उड़ती हुई पराग से सुशोभित है, महाश्चर्य कुञ्ज समूह रस-पुञ्जों के समान अति अद्भुत प्रतीत होते हैं ॥७२

[७३]

स्थलीषु यूथशो मत्त-मयूर-कृत-ताण्डवम् ।
रसालमुकुलोन्मत्त-कोकिलोद्गीतपञ्चमम् ॥

श्रीवृन्दावनीय पृथ्वी पर झुण्डों के झुण्ड मोर ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, आम्र-मुकुलों का आस्वादन कर उन्मत्त कोकिलाएं उदात्त पञ्चम स्वर में गान कर रही हैं ॥७३॥

[७४]

प्रफुल्लदिव्य कह्लार-कमलोत्पल-जातिभिः ।
हंस-सारस-चक्राह्व-कारण्डव-कुलाकुलैः ॥

प्रफुल्लित दिव्य कह्लार, कमल, उत्पल आदि विभिन्न जातियों के पुष्पों से यह शोभित है एवं हंस सारस, चक्रवाक, कारण्डव आदि पक्षियों से परिव्याप्त हो रहा है ॥७४॥

[७५]

सरित्सरोभिः सुस्वच्छ-परानन्दामृताम्बुभिः ।
रत्नबद्धतटैर्दिव्यैर्मणिसोपान – शोभिभिः ॥

सुन्दर स्वच्छ परमानन्दामृतवत् जलपूर्ण-नदी, सरोवर आदि के दिव्य मणिमय सोपानयुक्त रत्न-निबद्ध किनारों से यह श्रीवृन्दावन भूषित है ॥७५॥

[७६]

कालिन्द्या च महानन्द रसपीयूषधारया ।
स्वर्णरत्नमयानेक दिव्यपद्मोत्पलाढ्यया ॥

महानन्द रसामृत धारा-वाहिनी कालिन्दी के अनेक स्वर्ण रत्नमय दिव्य कमलों से एवं उत्पल समूह से यह मण्डित है ॥७६॥

[७७]

द्विजालिकुल-सन्नाद-दत्त श्रवणसौख्यया ।
दिव्यकोमल कर्पूर-परागोज्ज्वल बालुकैः ॥

यहाँ पक्षिगणों का एवं मधुकरों का सुन्दर निनाद श्रवणों को सुख देनेवाला है ; दिव्य कोमल कर्पूर-परागवत् उज्ज्वल वालु-राशि से परिव्याप्त है ॥७७॥

[७८]

रम्यया पुलिनैः स्वच्छैः सन्तोषासार वर्षिभिः ।
तत्राश्चर्या कुञ्जवाटी काचिदत्यन्तमोहिनी ॥

यहाँ स्वच्छ एवं सन्तोषामृत वर्षणकारी कालिन्दी के रमणीय पुलिनों में एक अत्यन्त मोहिनी आश्चर्यजनक कुञ्जवाटी शोभित हो रही है ॥७८॥

[७९]

अत्यन्ताद्भुतवैचित्र्या श्रीमद्वृन्दावनोज्ज्वला ।
यत्रत्यं सर्वमाश्चर्यं रससारैकदीपकम् ॥

अत्यन्त अद्भुत वैचित्री एवं श्रीवृन्दावन के द्वारा वह प्रकाशित हो रही है, और वहाँ की समस्त वस्तुएं आश्चर्य एवं रस-सार की उद्दीपक हैं ॥७९॥

[८०]

कामबीज-विलासात्म-सर्वसार सुखाकरम् ।
यत्र श्रीराधिकाकृष्णौ सर्व सुन्दर-सुन्दरौ ॥

यहाँ काम-बीज विलासात्मक सर्वसार एवं सुखकारी सर्व-सुन्दर-सुन्दर श्रीराधिका-कृष्ण विराजमान हैं ॥८०॥

[८१]

सहजाश्चर्य-कैशोरवयः श्रीविश्वमोहनौ ।
महाविमलकन्दर्परसोन्माद निरन्तरौ ॥

उनकी स्वाभाविक आश्चर्यमय किशोर वयस है, एवं रूप के द्वारा विश्व को वे मोहन करने वाले हैं, महा विमल कामरस में निरन्तर उन्मादित होकर विराजमान हैं ॥८१॥

[८२]

महादिव्यतम-स्निग्धगौरश्यामतनुच्छवी ।
एकैकाङ्गोच्छलत्स्वच्छच्छटौघच्छन्नदिक्चयौ ॥

उनकी महा दिव्यतम स्निग्ध गौरश्याम अङ्ग-कान्ति है, उनके एक-एक अङ्ग से स्वच्छ-स्वच्छ छटा समूह उत्थित होकर दिशा-विदिशा को आच्छन्न कर रहा है ॥८२॥

[८३]

महामोहन-दिव्याङ्गकान्तिलीनाखिलद्वयौ ।
लावण्यसार-सर्वस्व-दिव्याङ्गवलनाद्भुतौ ॥

निखिल वस्तुएं दोनों की महा-मोहिनी दिव्य-अनङ्ग कान्ति में लीन होरही हैं, एवं सर्व लावण्यसार के द्वारा ही उनके अद्भुत दिव्य अङ्ग सुवलित हैं ॥८३॥

[८४]

असमोर्ध्व-महाश्चर्य-सौन्दर्यापारवारिधी ।
परस्परात्यमर्याद-वर्द्धिष्णु प्रेमसागरौ ॥

दोनों ही असमोर्द्ध महाश्चर्य-सौन्दर्य के अपार सागर हैं एवं एक-दूसरे के प्रति अति असीम भाव से वृद्धिशील प्रेमसागर में निमग्न हैं ।।८४।।

[८५]

मदोन्मदानङ्गरसघूर्णमानाखिलाङ्कौ ।
रत्यावेश-वश-आस्यत्-सर्वाङ्गोत्पुलकावली ॥

दोनों का प्रति अङ्ग नित्य उन्मत्त-अनङ्गरस में घूर्णमान है,एवं रत्यावेश-वश सर्वाङ्गों में उच्च-पुलकावलि हो रही है ।।८५।।

[८६]

खेलन्तावत्यविच्छिन्न प्रोन्मदानङ्गकेलिभिः ।
अन्योन्यसहितानङ्गक्रीड़ान्यास्पर्शिमानसौ ॥

अति अविच्छिन्न भाव से निरन्तर प्रोन्मत्त अनङ्ग-केलि विलासादि के द्वारा श्रीयुगलकिशोर क्रीड़ा कर रहे हैं कि जिसका एक विन्दु भी अन्य व्यक्ति के हृदय गम्य नहीं हो सकता ।।८६।।

[८७]

परमाश्चर्यसङ्गीत कलोज्जृम्भितमन्मथौ ।
अतिशुद्धानुरागैक-महाब्धावाद्य आप्लुतौ ॥

परम आश्चर्यमय सङ्गीत-कला के द्वारा उनका मन्मथ प्रकाशित होता है, वे अति विशुद्ध आद्य-अनुरागमय महा-सागर में आ लुत हो रहे हैं ।।८८।।

[८८]

नित्यं विहरतो दिव्यसखीमण्डललालितौ ।
महाविदग्धस्वात्मैक रसमग्नालिजीवनौ ॥

दिव्य सखी मण्डली से सेवित होकर वे नित्य ही विहार कर

रहे हैं, एवं महाविदग्ध (प्राण-प्रियतम युगलकिशोर के) रस में मग्नचित्त सखीगणों के सर्वस्व जीवन हो रहे हैं ॥८८॥

[८९]

अथ स्वात्मेश्वरी राधा सुमहाभक्तिभावतः।
सदानुस्मर्यतां शुद्धस्वाद्यभाव रसाकृतिः ॥

अतः निज प्राणेश्वरी श्रीराधिका को सुमहाभाव-भक्ति से नित्य ही अनुस्मरण कर, श्रीराधा शुद्ध आस्वादनीय भाव-रसाकृति हैं॥८९

[९०]

सर्वासां नूतनाभीरसुन्दरीणां शिखामणिः।
सर्वलक्षण सम्पन्न-सर्वावयवसुन्दरी ॥

वह सकल नूतन गोपी-मण्डली की शिरोमणि हैं ; सर्व लक्षण सम्पन्ना एवं सर्वाङ्ग सुन्दरी हैं ॥९०॥

[९१]

सर्वाशेषजगन्मूर्छाकारिण्याश्चर्यरूपिणी।
मोहिनी-पार्वती-लक्ष्मी-रत्यादिरूपिणीर्वराः ॥

[९२]

कुर्वती यन्नखप्रान्तसौन्दर्यौघैरवाङ्मुखीः।
तप्तकाञ्चनगौराङ्गी सुस्निग्धानन्तकान्तिभृत ॥

निज-निज ईश्वर सहित निखिल जगन्मण्डली की वह मूर्च्छा-कारिणी एवं आश्चर्यरूप लावण्यवती हैं, मोहन करनेवाली लक्ष्मी पार्वती तथा रति आदि श्रेष्ठ श्रेष्ठ रूपवती स्त्रियों को भी वह अपने नखप्रान्त-सौन्दर्य-प्रवाह में बहा देनेवाली हैं, वह तप्त-काञ्चन-सुस्निग्ध कान्तियुक्त हैं ॥९१॥९२॥

[९३]

दशदिङ्मण्डलाच्छादि-सुगौराङ्गोच्छलच्छविः।
चिदचिद् द्वैतमामज्यात्युच्छलन्मधुरच्छविः ॥

अपने सुगौरवर्ण अङ्गों की कान्ति से दशोंदिशाओं को आच्छादन करनेवाली हैं, चित्-जड़ आदि द्वैत वस्तु को अच्छी प्रकार रूपसागर में निमग्न करके अति मधुर छबि प्रकाश करने वाली हैं ॥६३॥

[६४]

महाप्रेमरसाम्भोधि जृम्भणैकाद्भु च्छबिः ।
श्रीकृष्णात्मप्राणकोटि निर्म्मञ्छैकरसच्छबि ॥

वह महा प्रेमरस-समुद्र में प्रकाशित एक अद्भुत शोभा-शालिनी हैं एवं श्रीकृष्ण के कोटि प्राण निर्मञ्छनकारी एक मुख्यरस की शोभा धारण करने वाली हैं ॥६४॥

[६५]

स्वयंप्रभाच्छिदद्वैत-सत्प्रेमैकरसच्छबिः ।
आश्चर्य-नवकैशोरव्यञ्जि-दिव्यतमाकृतिः ॥

वह स्वयं प्रकाश एवं नित्य मिलनात्मक सुन्दर प्रेम की ही एक रसछबि हैं एवं आश्चर्य नवकैशोर में व्यञ्जित दिव्यतमाकृति युक्ता हैं ॥६५॥

[६६]

नवलावण्यपीयूषसिन्धुकोटिप्रवाहिनी ।
पदे पदे महाश्चर्य-सौन्दर्याशेषमोहिनी ॥

श्रीराधाजी अनन्त कोटि नव-लावण्यामृत-सिन्धु प्रवाहिनी हैं एवं प्रतिपद में महाश्चर्य सौंदर्य राशि से अशेष चराचर को मोहन करने वाली हैं ॥६६॥

[६७]

महामाधुर्यौघरूप-मोहनाङ्गोच्छलच्छबिः ।
आकुलीकृत-भृङ्गालिर्मल्लिचम्पकदामभिः ॥

उनके मोहनाङ्ग से महामाधुर्यराशि रूप एवं शोभा उच्छलित हो रहे हैं। मल्लिका-चम्पक रचित मालाओं पर भ्रमर-समूह आकुलित हो रहा है ॥९७॥

[९८—९९]

वृतां मूले विचित्रोरुपुष्पैर्मध्ये सुगुम्फिताम् ।
प्रचलद्रत्नगुच्छालिपुच्छां विश्वविमोहिनीम् ॥
शिरोगतातिसूक्ष्मश्रीलोचनान्तर्विलक्षिताम् ।
चारुवेणीलतां बिभ्रत्यापीनश्रोणीलम्बिनीम् ॥

उनकी वेणी का मूलदेश अनेक विचित्र पुष्पों द्वारा शोभित है, मध्यदेश सुन्दर भाव से ग्रथित है, एवं झूमते हुए रत्नों के गुच्छों से पश्चाद् भाग अलंकृत होकर विश्वविमोहन होरहा है, और सिर पर अति सूक्ष्म सुन्दर ओढ़नी में से दीखती हुई पृथु-जङ्घादेश पर्यन्त लम्बी सुन्दर वेणी-लता वे धारण कर रही हैं ॥९८॥९९॥

[१००]

सुनीलायत-सुस्निग्ध-सुपीनमधुरोज्ज्वलाम् ।
पन्नगीमिव चाम्पेय-वल्ल्याः पश्चाद्विलम्बिनीम् ॥

वह ओढ़नी सुनील, आयत, स्निग्ध, सुपीन, मधुर एवं उज्ज्वल हैं, देखने से ऐसा लगता है मानो चम्पकलता के पीछे एक नागिन लटक रही है ॥१००॥

[१०१]

जाम्बुनदमयानन्त-पूर्णचन्द्राननच्छविः ।
अनन्तचन्द्रिका-स्वर्णपद्मकोषमुखच्छविः ॥

स्वर्णमय अनन्त पूर्ण चन्द्रों के समान श्रीराधाजी के मुख की शोभा है, अथवा अनन्त ज्योत्सना-मण्डित स्वर्णपद्म के भीतर की कान्ति के समान उनके मुख की शोभा है ॥१०१॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का सप्तमं शतक समाप्त हुआ ।

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

अष्टमं शतकम्

[१]

उद्‌बुद्धमुग्धकनकाम्भोजकोषनिभानना ।
पक्वदाड़िम्बवीजाभ–स्फुरद्दशनदीधितिः॥

(श्रीराधाजी) मनोहर प्रफुल्लित स्वर्ण-पद्म कोषवत् सुन्दर-वदनी हैं एवं उनके दान्तों की कान्ति पके अनार के दानों की चमक की भांति स्फुरित हो रही है ॥१॥

[२]

चारुबिम्बाधरज्योतिर्वहन्मधुरिमाम्बुधिः ।
सौन्दर्यसार-चिबुक-श्यामबिन्द्वतिमोहिनी ॥

उनके सुचारु बिम्बाधर की ज्योति से माधुर्य का समुद्र प्रवाहित होरहा है, परम सुन्दर चिबुक पर श्याम-बिन्दु होनेसे वह अति मोहिनी मूर्त्ति बन रही हैं ॥२॥

[३]

सव्रीड़स्मेरचपल-खञ्जरीटायतेक्षणा ।
भ्रु विलासविनिर्धूत-कामकार्मुक-सौभगा ॥

लज्जायुक्त मृदु-मधुर-हास्य द्वारा उनके नेत्र खञ्जनवत् चञ्चल

हो रहे हैं, एवं भ्रुविलास से कामदेव के बाणों को पराजितकर वह महा सौभाग्य-शालिनी हो रही हैं ।।३।।

[४]

श्रीमन्नासापुटस्वर्णरत्नाक्तोज्ज्वलमौक्तिका ।
सुरत्न-कर्णताटङ्क-कर्णपूरमनोहरा ॥

वह सुन्दर नासिका में स्वर्ण रक्ताक्त उज्ज्वल मुक्ता धारण कर रही हैं, एवं सुन्दर रत्न-ताटङ्क, कर्णपूर आदि धारण कर मन को हरण कर रही हैं ।।४।।

[५]

नवकाञ्चनकम्बुश्रीकण्ठनिष्कमणिच्छटा ।
सुजात-नववक्षोज-स्वर्णकुट्मलयुग्मकम् ॥

उनके शङ्खवत् सुन्दर कण्ठ में नवीन काञ्चनमय निष्कमाला की मणि छटा विस्तृत हो रही है, तथा मनोज्ञ-नव-कुचयुगल स्वर्ण-कलिकावत् प्रतीयमान हो रहे हैं ।।५।।

[६]

परमाश्चर्यसौन्दर्य-महालावण्यमण्डलम् ।
मूर्त्तमाधुर्यैकरसं पीनवृत्तपृथून्नतम् ॥

वे (कुचयुगल) परमाश्चर्यमय सौन्दर्य एवं लावण्य से मण्डित हैं, एवं माधुर्य रस की मूर्त्ति ही हैं तथा वे पीन, वृत्त, पृथुल तथा उन्नत हैं ।।६।।

[७]

सम्वीत-कञ्चुकं चेलाञ्चलेनावृण्वती मुहुः ।
रत्नचूड़ावली-रत्नकेयूर-प्रसरच्छबिम् ॥

वे काञ्चुलि से आच्छादित हैं परन्तु फिर भी बारबार वस्त्राञ्चल से वह उन्हें आवरण करती हैं। रत्न-चूड़ावलि एवं रत्न-केयूर की शोभा इधर-उधर प्रसारित हो रही है ।।७।।

[८]

दधाना चारुदोर्वल्लीं महासुवलितोज्ज्वलाम् ।
सुस्निग्धहेमदलवद्वलिमत्पल्लवोदरीम् ॥

श्रीराधाजी की बाहु-लताएं महा सुगोल, उज्ज्वल एवं मनोज्ञ हैं, सुस्निग्ध स्वर्णकमल के पल्लववत् उनका उदर त्रिवली से शोभित हो रहा है ।।८।।

[९]

अत्यन्तचारुसुकृश-मध्यदेश-मनोहराम् ।
महासौन्दर्यसारातिपुष्यच्चवनितम्बिनीम् ॥

उनका अत्यन्त सुन्दर व सुकृश कटिदेश मनोहर है, नितम्ब-देश महा सौन्दर्यसार से पुष्ट हो रहा है ।।९।।

[१०]

चित्रकुञ्चितकौशेय–मञ्जर्यागुल्फरञ्जिताम् ।
सुहेमकदलीकाण्ड–सुस्निग्धोरुयुगोज्ज्वलाम् ॥

मञ्जरी द्वारा विचित्र रेशमी वस्त्र से कुञ्चित उनका गुल्फदेश रञ्जित होरहा है, तथा उरु युगलसुन्दर स्वर्ण-कदली के स्तम्भवत् सुस्निग्ध एवं उज्ज्वल हैं ।।१०।।

[११]

जानुबिम्बमहाशोभां दिव्यजङ्घामृणालिनीम् ।
चरणाम्बुजसौन्दर्य–संमोहित–चराचराम् ॥

उनके जानुबिम्ब की महा शोभा है, दिव्य मृणालवत् उनकी जङ्घा हैं, चरण-कमलों से वह चराचर को सम्यक प्रकार से मोहित कर रही हैं ।।११।।

[१२]

सलील-पदविन्यास-महामोहन-मोहिनीम् ।
काञ्चीकलाप-वलितां क्वणत्कनकनूपुराम् ॥

मनोहर चरणों की धरन से महामोहन को भी मोहित कर रही हैं, एवं काञ्चीकलाप तथा शब्दायमान स्वर्ण नूपुरों से शोभित हो रही हैं ॥१२॥

[१३]

दिव्यपादाङ्गुलीयाढ्य लसदङ्गुलिपल्लवाम् ।
माणिक्यपादकटकामुरुजङ्घाति शोभिताम् ॥

हर एक अङ्गुली-पल्लव में दिव्य पादाङ्गुली चमक रही है, वह दोनों चरणों में माणिक्यमय कटक धारण कर रही हैं ॥१३॥

[१४]

रत्नांगुलीयराजिभिर्विराजित-करांगुलीम् ।
पदे पदे महाशोभा-सिन्धुकोटि-विमोहिनीम् ॥
महाश्चर्यानन्तपार केलिवैदग्ध्यवारिधिम् ।

वह प्रति हाथ की प्रति अंगुली में रत्नमयी अंगूठी धारण कर रही हैं, प्रति पद-पद पर कोटि महाशोभा समुद्रों को मुग्ध कर रही हैं, एवं वह महाश्चर्य पारावाररहित केलिवैदग्धी का समुद्र हैं ॥१४॥

[१५]

महाश्चर्यानङ्गरसमयभङ्गीतरङ्गिभिः ॥
सुगौर-सुकुमाराङ्गैः सकृष्णाल्यादिं-मूर्छनम् ।

श्रीराधाजी महाश्चर्य अनङ्ग रसमयी भङ्गीरूप तरङ्गों से सुगौर कुमार अङ्गोंसे श्रीकृष्ण एवं सखीगणों पर्यन्त मूर्छित कर देती हैं ॥१५

[१६]

अथ वृन्दावनेश्वर्या रत्ननूपुरशोभिते ॥
श्रीपादाम्बुजयोः पूर्णे ज्योतिष्यतिरसोज्ज्वले ।
घनीभावात्मिका दासीयूथकोटिरनुस्मर ॥

इस प्रकार श्रीवृन्दावनेश्वरी के रत्नमय नूपुरोंसहित पादपद्म

अति रसमय उज्ज्वल व पूर्ण ज्योति से घनीभावात्मिका कोटि-कोटि दासी यूथों का भी अनुसरण कर ॥१६॥

[१७]

तत्तद्यूथाधिनाथाभिः शिक्षितादृतलालिताः ।
नानाविध–महाश्चर्य–कैशोरश्री-मनोहराः ॥

वे दासीयूथ अपनी-अपनी यूथ-नायिकाओं द्वारा शिक्षित, आदृत तथा लालित हैं ; एवं नाना विध महाश्चर्य कैशोरावस्था से मनोहर हैं ॥१७॥

[१८]

नानाविध–महाश्चर्य–वस्त्रालङ्कार चर्चिताः ।
नानाविध–महाश्चर्य–वर्णाकार–विचित्रिताः ॥

वे नाना प्रकार महाश्चर्यमय वस्त्रों से भूषित हैं, एवं नानाविध महाश्चर्यमय वर्णों एवं आकृतियों से वैचित्री-पूर्ण हैं ॥१८॥

[१९]

नानाविध–महाश्चर्य–कला–निर्माण–पण्डिताः ।
स्व-स्व-सङ्गीतशिक्षाभिः सन्तोषितप्रियद्वयाः ॥

वे दासियाँ नानाविध महाश्चर्य कला-निर्माण में पण्डित हैं एवं अपनी-अपनी सङ्गीत-शिक्षा द्वारा प्रियतम युगलकिशोर को संतोषित करती रहती हैं ॥१९॥

[२०]

वयःस्वभाव–प्रोन्मीलन्मधुरानेकतच्चेष्टिताः ।
अङ्गभङ्गिम–सव्रीड़हसिताऽनृजुवीक्षितैः ॥

[२१]

सहजैरेव सकलं स्थगयन्तीः सहेश्वरम् ।
तत्रकञ्चितनुं सौम्यां श्रीराधात्यऽनुकम्पिताम् ॥

किशोर-वयस के स्वभाव से अनेक-अनेक मधुर चेष्टाएं करती रहती हैं, सहज अङ्ग-भङ्गिमा, लज्जायुक्त हास्य और कुटिल कटाक्ष-आदि से वे ईश्वर तथा सकल जगत् को स्थम्भित कर देती हैं, उनके बीच श्रीराधाजी की अति कृपा-पात्र किसी एक सुन्दरी का अनुस्मरण कर ॥२०—२१॥

[२२]

क्षणं चरणविच्छेदाच्छ्रीश्वर्याः प्राणहारिणीम् ।
पदारविन्दसंलग्नतयैवाहर्निशं स्थिताम् ॥

क्षण काल के लिए चरण-सेवा त्याग करने पर वह सुन्दरी श्रीईश्वरी की प्राण-हारिणी होजाती है, अतः दिनरात वह पदकमल के सन्निकट ही रहती है ॥२२॥

[२३]

बहुना किं स्वकान्तेन क्रीड़न्त्यापि लतागृहे ।
पर्यङ्काधिष्ठापितां वा वस्त्रैर्वाच्छादितां क्वचित् ॥

और अधिक क्या कहा जाय ? लता-गृह में अपने कान्त के सहित क्रीड़ा करते समय भी श्रीराधाजी उसे शय्या पर बैठाय रखती हैं एवं कभी उसे कपड़ों से आच्छादन कर देती हैं ॥२३॥

[२४]

सुस्निग्धललित-स्वर्णसुगौरीं मधुरच्छविम् ।
कान्त्यानन्तां श्रियानन्तां माधुर्यैरप्यनन्तकाम् ॥

वह सुगौरी सुस्निग्ध ललित स्वर्णवत् मधुर शोभायुक्त है, तथा अनन्त कान्तियुक्त, अनन्त शोभा सम्पत्तियुक्त एवं माधुर्यराशि युक्त है ॥२५॥

[२५]

व्यञ्जदद्भुतकैशोरां सुजात–मुकुलस्तनीम् ।
तारा–हारावली–चारुचित्रकन्चुकधारिणीम् ॥

वह अद्भुत किशोरावस्था युक्त है, स्तन-मुकुल सुन्दर भाव से उदित हो रहे हैं, एवं तारों की हारावली तथा विचित्र काञ्चुलि धारण कर रही है ॥२५॥

[२६]

स्निग्धच्छटा-कन्ददोःकन्दली-चूड़ाङ्गदश्रियम् ।
चारुश्रोणितटक्रीड़न्महावेणीलतोज्ज्वलाम् ॥

स्निग्ध-कान्ति की आधार स्वरूप कदलीवत् बाहुओं में चूड़ा तथा अङ्गद की सुन्दर शोभा है, तथा सुमनोहर श्रोणितट पर महा वेणीलता इतस्ततः उच्छलने से अति उज्ज्वलता को प्राप्त होरही है॥२६

[२७]

अत्यन्तचारुसुकृश-मध्यदेश-मनोहराम् ।
दिव्यकुञ्चितकौशेयेनागुल्फ-परिमण्डिताम् ॥

उस (दासी) का मध्यदेश अत्यन्त सुन्दर है, सुकृश और मनोहर है, दिव्य रेशमी वस्त्र द्वारा कुञ्चित गुल्फदेश पर्यन्त सुसज्जित हो रही है ॥२७॥

[२८]

निचोलेनातिसूक्ष्मेण स्वगुच्छाञ्चल शोभिना ।
अलकान्त परिवृतां मुहुर्मोहनवीक्षिताम् ॥

पत्र-पुष्पादि के स्तवक-शोभित अति सूक्ष्म वस्त्रों में वह अलकावली पर्यन्त आवृत हो रही है एवं बारबार उसे श्रीश्यामसुन्दर विशेष भाव से निरीक्षण करते हैं ; अथवा वह मोहनकारी नेत्रों युक्त है ॥२८॥

[२९]

सव्रीड़मधुरस्मेर-सलीलापाङ्गवीक्षणाम् ।
नानाश्चर्यकलोदारां नानाभङ्गीमयाकृतिम् ॥

वह लज्जायुक्त मृदु-मधुर हास्ययुक्त है एवं विलासपूर्ण अपांग विक्षेप-कारिणी है, नानाविध आश्चर्य-कला-विशारद तथा नाना भङ्गीयुक्त आकृतिशील है ॥२९॥

[३०]

राधाकृष्ण–महाप्रेमोदञ्चि–रोमाञ्चसञ्चयाम् ।
श्रीश्वरीशिक्षिताशेष-कलाकौशलशालिनीम् ॥

श्रीराधाकृष्ण के महाप्रेम में उसके रोमाञ्च समूह उल्लसित होते हैं, एवं प्राणेश्वरी द्वारा शिक्षित सर्व कलाओं में वह प्रवीण है ॥३०

[३१]

प्रेष्ठद्वन्द्वप्रसादस्रग्वस्त्रभूषादि मोहिनीम् ।
महाविनय सौशील्याद्यनेकाश्चर्यसद्गुणाम् ॥

प्रिया प्रीतम के प्रसादी माला-वस्त्र-भूषणादि धारण करने से मनमोहिनी होरही है उसमें महाविनय एवं सुशीलतादि अनेक आश्चर्य सद्गुण विराजते हैं ॥३१॥

[३२]

श्रीश्वरीदृष्टिवागादि–सर्वेङ्गित विचक्षणाम् ।
श्रीकृष्णदत्तताम्बूल–चर्वितां तत्तदादृताम् ॥

वह दासी श्रीराधा जी के नेत्र एवं वाक्यों के सब इशारों को समझने में समर्थ है। श्रीकृष्ण के चर्वित पानादि का वह आस्वादन करती है एवं श्रीयुगलकिशोर उसका आदर करते हैं ॥३२॥

[३३]

गूढ़श्यामाभिसाराङ्ग–भृङ्गारादिभिरन्विताम् ।
राधा–प्रीत्यनुकम्पादि–प्रवृद्धप्रेमविह्वलाम् ॥

श्रीश्याम के निगूढ़ अभिसारोपयोगी भृङ्गारादि सामग्री को वह धारण करती है, एवं श्रीराधा की प्रीति तथा अनुकम्पादि से अत्यन्त प्रेम-विह्वल हो जाती है ॥३३॥

[३४]

राधा-पदाब्जसेवान्यस्पृहा-कालत्रयोज्झिताम् ।
राधा-प्रीतिसुखाम्भोधावपारे बुडितां सदा ॥

वह श्रीराधा की चरण-कमल सेवाके व्यतीत और कोई वासना तीनों काल में कभी भी नहीं करती एवं श्रीराधा के अपार प्रीति सुख-समुद्र में नित्य निमग्न रहती है ॥३४॥

[३५]

राधा-पदाम्बुजादन्यत् स्वप्नेऽपि च न जानतीम् ।
राधा-सम्बन्धसंधावत् प्रेमसिन्धौघशालिनीम् ॥

श्रीराधा पादपद्म के सिवाय स्वप्न में भी वह और कुछ नहीं जानती एवं श्रीराधा के सहित सम्बन्ध रूप प्रेम-समुद्र की तरङ्गों में वह प्लावित हो रही हैं ॥ ३५ ॥

[३६]

सेशाशेष-महाविस्मापक-कैशोररूपिणीम् ।
क्षणे क्षणे रसास्वाद-प्रोदञ्चत्पुलकावलीम् ॥

वह निखिल जगत् को महा विस्मय करनेवाले कैशोर-रूपयुक्त है एवं प्रतिक्षण ही रसास्वाद में पुलकित हो रही है ॥३६॥

[३७]

सर्वाङ्गकान्तिसौन्दर्यैरपारैः सर्वमोहिनीम् ।
राधा-कर्माकुलतया तत्र तत्र विचालिनीम् ॥

समस्त अङ्गों के सौन्दर्य-प्रकाश से सब को ही वह मोहन करने वाली है एवं श्रीराधाजी के सेवा-कार्य वश व्याकुल चित्त से इधर-उधर विचरण कर रही है ॥३७॥

[३८]

नवस्तवकिनीं स्वर्णलतां सञ्चारिणीमिव ।
अङ्गच्छटा-तरङ्गौघैश्छादयन्तीं दिशोदश ॥

वह मानो नवीन स्तवकिनी इतस्तः सञ्चारण करनेवाली स्वर्ण-लता है जो अपने श्रीअङ्गों के सौन्दर्य-प्रकाश से दशोंदिशाओं को प्रकाशित कर रही है ॥३८॥

[३९]

चित्रयन्तीमिव दिशो विचित्राङ्गच्छटाचयैः ।
सलील–पदविन्यासैः सुनूपुररणत्कृतैः ॥

[४०]

काञ्चीवलयनादैश्चमधुरैर्विश्वमोहिनीम् ।
राधाकृष्ण-रहोगोष्ठी-सुधा-मधुरशीतलाम् ॥

विचित्र अङ्ग छटा से दशोंदिशाओं को वह विचित्र कर रही है, विलासमय पाद-विन्यास, सुन्दर नूपुरों की झङ्कार से तथा काञ्ची वलयादि के मधुर स्वर से वह विश्व को विमोहित कर रही है, श्रीराधाकृष्ण की निर्ज्जन वार्तालाप सुधा आस्वादन कर मधुर शीतल हो रही हैं ॥३९—४०॥

[४१]

तत्तद्वचनपीयूषैर्महामधुरशीतलैः ।
श्रीराधामुखचन्द्रानुगलितैरभिनन्दिताम् ॥

श्रीराधा के मुखचन्द्र से निकली हुई महा मधुर शीतल वचन-सुधा के द्वारा वह हर्षित रहतीं हैं ॥४१॥

[४२]

श्रुत्वा श्रुत्वातिसुखितां पुनः श्रवणलालसाम् ।
एवमेवं स्मरन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वथा
अस्फूर्त्तितः कथातोऽपि श्रीमद्वृन्दावने वस ॥

उन वाक्यों को अनेक बार सुन-सुन कर वह अतिशय सुखित होती है, एवं पुनः पुनः सुनने के लिए उत्सुक रहती हैं, इस प्रकार नित्य सकल अवस्थाओं में सब प्रकार से स्मरण कर ; इस समस्त

की यदि स्फूर्ति न हो तो भी इस की कथादि स्मरण करते करते श्रीवृन्दावन में वास कर ।।४२।।

[४३]

अत्यन्ताशुचिवीभत्स-देहादौ नैव कर्हिचित् ।
देहि दृष्टिं प्रमादादप्यत्यनर्थपरंपराम् ॥

अत्यन्त अशुचि वीभत्स देहादिक में भूल कर भी अति अनर्थ-मूलक दृष्टिपात मत करना ।।४३।।

[४४]

विन्मूत्रश्लेष्मपूयादिक-भरतिमिदं स्नायुमांसास्थि-मज्जा-
रक्ताद्यात्म-त्वचाच्छादितमहह रहिः स्वार्थनिर्मूलकारि ।
एकं ब्रह्माद्यतार्य्यं युवतिरिति मतं स्वीयसंमोहजालं
त्यक्त्वा दूरेण वृन्दावनमतिपरमस्वार्थमद्धा श्रयन्तु ॥

मल - मूत्र - श्लेष्मा-पूयादिपूर्ण, स्नायु, मांस, अस्थि, मज्जा, रक्तादियुक्त त्वचा से ढका हुआ, स्वार्थ निर्मूलकारी, ब्रह्मादिक से भी अजेय "युवति" नामक एक स्वीय संमोहजाल है, इसे दूर से ही त्याग करके अपने परम पुरुषार्थ श्रीवृन्दावन का आश्रयकर।।४४

[४५]

सर्वात्मार्थोरुविघ्नं कलय यदि मनो योषितां भावनिघ्नं
निघ्नन्दुष्टेन्द्रियाणि प्रसभमुदयभाञ्ज युद्यतामर्षदण्डैः ।
तद्वत्पन्चैव भूषादिकमपि नितरां दूरदूरेण कुर्वन्
प्रत्यूहाभासमन्य तृणमिव गणयन्नासस्व वृन्दावने भोः ॥

यदि मन को सर्वात्मा और स्वार्थों में विघ्नकारी नारी के भावाधीन तू देखता है, तो बलपूर्वक उठती हुई दुष्ट इन्द्रियों को क्रोध रूप दण्ड से दमन कर । इसी प्रकार भूषादि वहुत दूर फैंक, विघ्नाभास आने पर उसे तृणवत् जानकर श्रीवृन्दावनमें वासकर।।४५

[४६]

आत्मारामेश्वर-श्रीहरिमिह न विना निस्तरेत् कोऽपि मायां
यासौ मायातिमायाद्यनुहसितकटाक्षाङ्गभङ्गाभिरामा ।
रामाख्या कालकूटादपि विषमतमा भाति सौधीव धारा
राधावत् कृष्णनामाभिदधदिह शमी तिष्ठ वृन्दावनेऽतः ॥

इस पृथ्वी पर आत्मारामेश्वर श्रीहरि के बिना कोई भी इस माया से उत्तीर्ण नहीं हो सकता, जो माया अति कपट विस्तार करके हास्य, कटाक्ष और अङ्ग-भङ्गी आदि से अति सुन्दरी प्रतीत होती है ; यदि इसका नाम रामा (रमणीया व तृप्तिदायिका) है एवं आपात दृष्टि से सुधा-धारावत् लगती है, तथापि यह विष से भी बढ़कर विषतम है, अतएव "राधा" नाम संयुक्त "कृष्ण" नाम (राधाकृष्ण) उच्चारण करते हुए इस श्रीवृन्दावन में शान्तिपूर्वक वास कर ॥४६॥

[४७]

वृन्दारण्येऽद्भुतरसमयी चेतसः काप्यवस्था
प्रेमानन्दानपि च परमान् विन्दुमात्री करोति ।
मिथ्या-दुखात्मकविषयगैरिन्द्रियैर्वञ्चित स्तान्
नैव प्राप्तुं प्रभवति जनो देवमाया-स्त्रियान्धः ॥

इस श्रीवृन्दावन में चित्त की ऐसी एक अद्भुत रसमयी अवस्था होती है, जो परम प्रेमानन्द समूह को भी विन्दुमात्र रूप में कर देती है ; किन्तु हाय ! मिथ्या दुखात्मक विषयों में दौड़नेवाली इन्द्रियों से ठगे हुए लोग दैवी मायारूप स्त्री द्वारा अन्धे होकर उस आनन्द-राशि को प्राप्त नहीं कर सकते ॥४७॥

[४८]

द्वैतं प्रोज्झन्मधुरमधुरानन्तकान्तिप्रवाहैः
सेशं संमूर्च्छयदगजगद्दिव्यरूपाङ्गभङ्गैः ।

सव्रीड़ोद्यंस्मितसुमधुरापाङ्ग दिग्धेषु-विद्धे
श्यामे नानाजानितविकृति ध्याय राधाख्यमोजः ॥

मधुर-मधुर अनन्त कान्ति-प्रवाह में ही द्वैतमात्र को जो लोप करती है, दिव्य रूप एवं अङ्ग-भङ्गी द्वारा स्व-स्व ईश्वर सहित स्थावर-जङ्गमादिक समस्त को ही जो मूर्छित कर देती है, लज्जायुक्त मृदुहास्ययुक्त सुमधुर अपाङ्ग विक्षेप रूप विषाक्तबाणों द्वारा श्यामसुन्दर को घायल कर जो अनेकविध अज्ञात विकारों को प्राप्त हो रही है। उस श्रीराधा-नामक मूर्त्ति का ध्यान कर ।।४८।।

[४९]

स्त्रीराक्षस्याः सुविषमकृतं रक्षतं रक्षतं च
क्रोधासूया-मदपिशुनता-दम्भ-लोभानृतादेः ।
वृन्दाटव्या विरहभयतो रक्षतं न्यूनभावाद् –
राधाकृष्णौ निजकरुणया सर्वतो रक्षतं माम् ॥

हे राधाकृष्ण ! स्त्री राक्षसी के सुविषम कार्य से मेरी रक्षा कीजिए, क्रोध, असूया, मद, पिशुनता, दम्भ, लोभ एवं कपटता आदि से रक्षा कीजिए। श्रीवृन्दावन का अल्पमात्र भी विरह जिस से हो, उससे भी मेरी रक्षा करें। अपनी करुणा से मेरी सर्वत्र रक्षा कीजिये ।।४९।।

[५०]

क्षुधा देहत्यागो वरमिह गृहस्थैर्न हि मिला–
प्यपि श्रेयःप्राप्तौ न युवतिसमीपं क्षणमये ।
न जह्यां श्रीवृन्दावनमखिलनाशेऽपि मनसा–
प्यहो क्षुद्रस्यापि व्यवसितिमिमां कः सफलयेत् ॥

यहां (श्रीवृन्दावन में) भूखा मर जाऊं सो अच्छा है, तथापि गृहस्थियों से मैं नहीं मिलूंगा। श्रेय (आत्यन्तिक मङ्गल)की प्राप्ति के

उद्देश्य से भी किसी युवती के पास में क्षणकाल के लिए भी नहीं जाऊंगा, सर्वनाश हो जाने पर भी मन से श्रीवृन्दावन का त्याग नहीं करूंगा। अहो ! इस मुझ क्षुद्र व्यक्ति की यह चेष्टा कौन सफल कर सकता है ? ॥५०॥

[५१]

न शास्त्रगुरुकोटिभिर्न खलु लोकनिन्दाशतै –
र्महानरकदृष्टिभिर्न हि विपत्तिसौख्यैर्न हि ।
मनागपि च नोत्सहे हतमनो युवत्याहृतं
निरोद्धु मत ईदृशं किमविताऽसि वृन्दाटवि ॥

कोटि-कोटि बार शास्त्र एवं गुरु द्वारा तथा शत-शत बार लोकों द्वारा निन्दनीय जानकर, महानरक-रूप देखकर तथा लेश-मात्र सुख को न प्राप्त करके भी—हाय ! मैं अपने हत-भाग्य मन को स्त्री द्वारा चुराये जाने से किसी भांति भी न रोक सका ; अतएव हे श्रीवृन्दावन ! क्या ऐसे मुझ पतित की आप रक्षा नहीं करोगे ? ॥५१॥

[५२]

जरीहर्त्ति स्वान्तं हरि हरि युवत्यादिविषयो,
नरीनर्त्याक्रम्य त्वतिशिरसि माया भगवतः ।
वरीवर्त्तीत्याशा चिरमिह तु वृन्दावन-वने
न जाने राधायाः कथमिव चरीकर्त्ति करुणा ?

हरि ! हरि ! युवति आदि विषय मेरे मनको बार-बार हरण करते हैं, भगवन्माया सिर पर आरोहण कर बार-बार नृत्य कर रही है, किन्तु इस श्रीवृन्दावन में वास करने की बहु-कालीन आशा भी है। मैं नहीं जानता, श्रीराधाजी की करुणा क्या व्यवस्था कर रही है ? ॥५२॥

[५३]

राधा-कीर्तिसुधा-रसेन रसना रात्रिन्दिवं पूर्य्यतां
श्रीवृन्दाविपिने तदीयपदयोः कैङ्कर्य्यमेवार्थ्यताम् ।
धैर्यं स्वर्णमयीशितुर्नववयोरूपश्रिया हार्यतां
प्रेमाश्रुत्पुलकादिभावविभवव्यक्त्या जगत्तार्यताम् ॥

श्रीराधाजी की कीर्त्ति-सुधा से दिनरात तू अपनी रसना की पूर्त्ति कर ; श्रीवृन्दावन में उनके चरण कमलों की सेवा की प्रार्थना कर ; सुवर्णमयी प्राणेश्वरी के नवीन वयस रूप-शोभा आदि से अधीर हो जा ; प्रेम-अश्रु एवं उच्च पुलकावलि आदि भाव-सम्पत्ति से सम्पन्न होकर जगत् का उद्धार कर ॥५३॥

[५४]

अतिरसविवशं किशोरयुग्मं द्रुत-नवकाञ्चननीलरत्नरोचिः ।
सुविमल-वरभावमूर्त्ति-वृन्दाविपिन-निकुञ्जगृहोदरे चकास्ति ॥

अति रस के वशीभूत, द्रुत नवीन स्वर्ण एवं नील मणि की ज्योतियुक्त युगलकिशोर सुविमल श्रेष्ठ-भावपूर्ण मूर्त्ति प्रकट कर श्रीवृन्दावन की निकुञ्जवाटिका में शोभित हो रहे हैं ॥५४॥

[५५]

नवनव-रतिलोल-गौरनीलद्वय-मह एकरसात्मकं किशोरम् ।
निरवधि भज सत्कलावलीभिर्नवरसपुञ्जनिकुञ्जवाटिकायाम् ॥

नव-नव रतिलम्पट, एक रसात्मक, गौरनील कान्ति किशोर-युगल का सुन्दर कलाविलासादियुक्त नवीन रस-पुञ्ज-शालिनी निकुञ्ज-वाटिका में निरन्तर भजन कर ॥५५॥

[५६]

व्रजजन-वरवर्णिनी-विवर्णीकृतमुखमोहन-मोहनाङ्गरोचिः ।
सपति-रतिरमादि-मूर्च्छनश्रीनखसुषमा हृदि राधिका ममास्तु ॥

जो अपनी महा मोहनकारी अङ्ग-कान्ति से व्रज-रमणियों के मोहन-मुख को भी विवर्ण कर देती है, एवं जिनके परम सुन्दर नख की छटा से पति सहित रति और लक्ष्मीदेवी आदि भी मूर्छित हो जाती है, वह श्रीराधिकाजी मेरे हृदय में विराजें ॥५६॥

[५७]

सर्वर्त्त्वद्भु त-सद्गुणैर्विलसितं सर्वोज्ज्वलात्युज्ज्वलं
सर्वस्मान्मधुरादतीव मधुरं सर्वार्थदात्यर्थदम् ।
सर्वस्माच्च सुगन्धशीतलतरात् सद्गन्धवच्छीतलं
सर्वानन्दमयाच्चमत्कृत-महानन्दाब्धि वृन्दावनम् ॥

समस्त ऋतुओं के समस्त सद्गुणों युक्त, समस्त उज्ज्वलता को उज्ज्वलता देनेवाला, समस्त मधुरों में मधुर, समस्त पुरुषार्थ देनेवालों में भी महान दानकारी, समस्त सुगंधित शीतल वस्तुओं से भी अधिकतर सुगंधित एवं शीतल करने वाला तथा सर्व आनन्दमय पदार्थों को भी चमत्कृति करने वाला महानन्द-समुद्र है—यह श्रीवृन्दावन ॥५७॥

[५८]

नित्यानन्दान्निरवधि विवर्द्धिष्णु-दिव्यावभासां
वासान् दिव्यान् प्रतिपदमनोहारिणः प्रोद्गिरन्तीम् ।
नित्यं सुस्वस्तिकमुखमहादिव्य संस्थान-वृन्दां
श्रीमद्वृन्दावनभुवमहं भावगम्यां भजामि ॥

नित्यानन्द-वश अतिशय वृद्धिशील दिव्य-प्रकाशयुक्त, प्रति स्थान पर दिव्य मनोरम गंध प्रकाश करनेवाली- एवं नित्य सुन्दर गृहादि महा दिव्य वास-स्थान देनेवाली भावगम्य इस श्रीवृन्दावन की भूमि का मैं भजन करता हूँ ॥५८॥

[५६]

श्रीराधामुरलीधरौ गुणनिधि श्रीमत्पदाम्भोरुह –
द्वन्द्वनैव सुधा-मुधाकर-महामाधुर्यनिस्यन्दिना ।
आश्चर्यातुलसौकुमार्य परमावत्यन्तकौतूहलाद्–
यस्यां सञ्चरतः सदाधिवस तां वृन्दावनीयावनीम् ॥

आश्चर्यमय अनुपम सुकुमारता के परम आश्रय, अमृत की निन्दा करने वाले महामाधुर्य को प्रदान करने वाले गुणनिधि श्रीमुरलीधर के मनोरम युगल-चरण-कमलों से अति कौतूहल-क्रांत श्रीवृन्दावन की भूमि में नित्य निवास कर ॥५६॥

[६०]

महाचिन्तारत्नप्रचयमय-कूर्पादि-वलितां
सुकर्पूरक्षोदैः सुकुसुमपरागैश्च निचिताम् ।
षड़ूर्मीणां निर्मूलनकर सकृत्स्पर्शनलवां
भवाब्धिं श्रीवृन्दावनभुवमितः सन्तर सुखम् ॥

महा चिन्ता-मणिमय स्थलोंसे युक्त, सुन्दर कर्पूरवत् चूर्ण द्वारा तथा पुष्पराग समूह द्वारा व्याप्त, लवमात्र स्पर्श करने से ही षड़ ऊर्म्मी अर्थात् शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा तथा पिपासा को नाश करने वाले रस को प्रदान करने वाली श्रीवृन्दावन-भूमि को प्राप्त होकर सुखपूर्वक भव-सागर से उत्तीर्ण हो ॥६०॥

[६१]

महाज्योतिरूपामतिविमल-नाना-मणिघटा –
च्छटाभिर्वैचित्र्यं किमपि दधतीं नित्यसुखदाम् ।
समन्ताच्छ्रीराधा-मधुपति-पदाङ्कैः सुमधुरां
स्मराम श्रीवृन्दावनभुवमनन्ताद्भुत-गुणाम् ॥

महा ज्योतिरूपा, अति विमल नाना मणि-समूह की कान्ति

से अनिर्वचनीय विचित्रता धारण करने वाली, नित्य सुखद, सर्वत्र श्रीराधा-मधुपति के चरण-चिन्हों से सुमधुरा तथा अनन्त अद्भुत गुण-मण्डिता श्रीवृन्दावन की भूमि को मैं कब स्मरण कर पाऊंगा॥

[६२]

भूरेषा हन्त सेशाखिलपरम-महाप्राज्ञ-दुर्ज्ञान सर्वा-
श्चर्यानन्तप्रभावा भगवति सहसोज्जृम्भितैकान्तभावा ।
स्व ज्योतिर्भासमाना परमरसमयी तुर्यतुर्यातिधुर्या
माधुर्यैर्धैर्मनो मे रमयति परमानन्द वृन्दावनीया ॥

हाय ! इस श्रीवृन्दावन की परमानन्दमय भूमि—अपने-अपने ईश्वरों सहित अखिल परम महा-विज्ञगणों को भी दुर्बोध्य है, आश्चर्यमय तत्व-स्वरूपा तथा अनन्त प्रभावयुक्ता है, सहसा ही भगवान् को एकान्तभाव दायिका है, निज ज्योति से ही स्व-प्रकाश हैं, परम रसमयी, एवं तुरीय से भी तुरीया है, अति श्रेष्ठा है, माधुर्यराशि से यह मेरे मनको अति आनन्द प्रदान करती है।।६२।।

[६३]

त्यक्ता सत्ख्यात्यपेक्षा न गणितमयशो नादृता धर्मनिष्ठा
त्यक्तं विद्याविनोदाद्यखिलमति तपोज्ञानयोगाद्युपेक्षि ।
गुर्वादीनां वचो न श्रुतमपि बहुना किं न देहोऽथवेक्षि
श्रीवृन्दारण्य ! गत्वा तव शरणमयं न ह्युपेक्ष्यः कदापि ॥

जिसने सत्ख्याति की अपेक्षा त्याग दी है, अख्याति की कोई बात नहीं करता, धर्मनिष्ठा का आदर नहीं करता, विद्याविनोदादि जिसने सब त्याग दिये हैं, तप, ज्ञान, योगादि की भी जिसने उपेक्षा करदी है, गुरु-आदि के वाक्यों को भी नहीं सुनता, और अधिक क्या ? जिसको अपने देह की ओर भी ध्यान नहीं है, हे वृन्दावन ! ऐसा पुरुष जब तुम्हारी शरण ग्रहणकर ले, तो आप कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते ।।६३।।

[६४]

राधा तदेकालङ्कारौ प्रीत्येकरसविग्रहौ ।
किं भक्तिरङ्कान् पङ्काब्धीन् स्ववने नोऽपि पश्यतः ?॥

श्रीराधा तथा उनके मुख्य भूषण (श्रीश्यामसुन्दर) दोनों एकमात्र प्रीति-रस के ही विग्रह हैं, भक्तिहीन कङ्गाल एवं कीच के सागर समान मुझ पतित को क्या अपना श्रीवृन्दावन प्रदान करेंगे ॥ ६४ ॥

[६५]

राधापदारविन्द श्रीमञ्जुमञ्जीरशिञ्जिता ।
महाश्चर्यातिमाधुर्य्या ध्येया वृन्दावनेऽस्तु नः ॥

श्रीवृन्दावन में महाश्चर्यमय अति मधुर श्रीराधा-चरणकमल की मनोहर मञ्जीरध्वनि हमारी ध्येय (ध्यान करने योग्य) हो ॥६५॥

[६६]

वीणा-मृदगं-तालादियुक्तैर्हासविहासिभिः ।
उल्लासिभिः प्रियसखीमण्डलैः परिमण्डिता ॥

वीणा, मृदंग, तालादियुक्त हास्य-विहासमयी उल्लासिनी प्रिय सखी-मण्डली से श्रीराधाजी घिरी हुई हैं ॥६६॥

[६७]

रत्नभृङ्गार-ताम्बूलसम्पुट-व्यजनादिभिः ।
गृहीत्वा किङ्करीवृन्दैरनुयाता मनोहरैः ॥

रत्न भृङ्गार, ताम्बूलसम्पुट, वीजना आदि हाथ में धारणकारिणी दासियाँ जिनके पीछे गमन कर रही हैं ॥६७॥

[६८]

समस्त चिदचिद्द्वैत-प्रपञ्च प्रोच्छलच्छबिः ।
अनन्तमाधुरीपूर्णा स्वर्णवल्लीनिभाकृतिः ॥

समस्त चिद्चिद् द्वैत प्रपञ्च की वस्तुओं में कान्ति विस्तारिणी अनन्त माधुर्यपूर्णा, एवं स्वर्ण-लता की भांति आकृति वाली-॥६८॥

[६९]

शिरीषपुष्पमृदुभिरङ्गैः सुस्निग्ध-सुन्दरैः ।
कैशोरमाधुरीकान्तिभङ्गिमादि-चमत्कृतैः ॥

[७०]

उद्वेलमधुरानङ्गरसैकाम्बुधिवाहिभिः ।
वृन्दावन-स्थिर-चर-सर्वसत्त्व-विमूर्च्छनी ॥

शिरीष के पुष्प की भांति कोमल, रंगीन, सुस्निग्ध तथा सुन्दर कैशोर की माधुर्य कान्ति तथा भङ्गिमादि के चमत्कार समूह से सम्वलित उत्तंग मधुर काम रसेकात्मक सागर प्रवाहित कर श्रीवृन्दावन के स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त प्राणियों को मूर्छित करने वाली—॥ ७० ॥

[७१]

अनेकदिव्यालङ्कार-दिव्यमाल्यानुलेपना ।
दिव्यकौशेयकूर्पासगुच्छाञ्चल-निचोलिनी ॥

श्रीराधाजी अनेक दिव्य अलंकार धारण कर रही हैं, दिव्य माला एवं चन्दन से चर्चिता हैं, दिव्य रेशमी कञ्चुक-स्त्वकवत् कुञ्चित् अञ्चल युक्त निचोलिनी धारण कर रही हैं—॥७१॥

[७२]

श्यामांसन्यस्त-रोमाञ्चद्वामश्रीभुजवल्लरिः ।
दक्षिणश्रीकराब्जेन लीलाकमल-घूर्णनी ॥

श्रीश्यामसुन्दर के स्कन्ध पर रोमाञ्चित वाम भुजलता रख रही हैं, दक्षिण श्रीकरकमल में लीला-कमल घुमा रही हैं ॥७२॥

[७३]

किङ्करीभिर्मुहुः पथि पथि वीज्यमाना निजाञ्चलैः ।
भोज्यमाना च ताम्बूलं भोजयन्ती स्वयं प्रियम् ॥

मार्ग में दासीगण अपने-अपने अञ्चल से उनको वीजना कर रही हैं, एवं ताम्बूल अर्पण कर रही हैं, और वह स्वयं भी अपने हाथों से प्रियतम को भोजन करा रही हैं ।।७३।।

[७४]

पाय्यमाना क्वचित् प्रेम्णा रत्नभृङ्गारसंस्थितम् ।
अमृतं शीतलं स्वादु कर्पूरादि-सुवासितम् ॥

कोई-कोई दासी प्रेमपूर्वक रत्नभृङ्गार में रखे हुए कर्पूरादि से सुगंधित सुस्वाद अमृतमय शीतल जल को पान करा रही है ।।७४।।

[७५]

दृष्ट्वा दृष्ट्वाद्भुतं रूपं श्रुत्वा श्रुत्वाद्भुतं रवम् ।
किमेतदिति पृच्छन्ती विस्मयान्निजनागरम् ॥

अद्भुत रूप देख-देख कर तथा अद्भुत शब्दों को सुन-सुन कर विस्मित होकर वह अपने नागर से पूछती है "यह क्या है ?"।।७५।।

[७६]

महामाधुरिमाश्चर्य-पादविन्यासलीलया ।
रणन्नूपुरयोत्सर्पि-नखचन्द्रच्छटौघया ॥

[७७]

महामाधुर्यसौभाग्यघने वृन्दावने वने ।
चरन्ती चारुपरमकौतुकाक्रान्तमानसा ॥

उनके चरणों में शब्दायमान नूपुर शोभित हैं एवं नखचन्द्र इधर-उधर कान्ति का प्रसार कर रहे हैं । महा माधुर्यमय एवं आश्चर्यमय पाद विन्यास लीला द्वारा महा माधुर्यघन श्रीवृन्दावन में परम चारु कौतुकक्रान्त-चित्त होकर वे विचरण कररही हैं।७६-७७

[७८]

तत्र तत्र महाश्चर्ये महारम्यतमस्थले ।
उपविष्य प्रगायन्ती गायन्ति प्रियं सखी ॥

जहाँ-तहाँ महाश्चर्यमय महा रमणीय स्थलों पर बैठकर सखी-वृन्द गान करती हैं, और कभी प्रियतमा श्रीराधाजी से गान कराती हैं ॥७८॥

[७९]

वृन्दारण्यानन्यगतेरन्तरेव दिवानिशम् ।
इत्थम्भूतानन्तलीला सेव्या सास्तु ममेश्वरी ।

श्रीवृन्दावन में अनन्य शरण ग्रहण करने वाले के मन-मन्दिर में इस प्रकार की अनन्त-लीला परायण मेरी प्राणेश्वरी श्रीराधा दिनरात सेवित हों ॥७९॥

[८०]

यो वृन्दावनमाधुरीं सकृदपि स्वान्ते समास्वादयेद्–
राधा-माधव-शुद्धमन्मथरसोल्लासैश्चमत्कारिणीम् ।
शास्त्रीयानपि लौकिकानपि जहच्चेष्टा-कलापानसौ
नानाप्रेमविकार–मोहनतनूरुन्मत्तवद्दृष्यते ॥

श्रीराधामाधव की अनङ्गरसोल्लासमयी चमत्कारी श्रीवृन्दावन माधुरी जिसने एक बार भी अपने अन्तःकरण में (स्वरूप में अव-स्थित होकर) सम्यक् प्रकार आस्वादन की है, वह शास्त्रीय एवं लौकिक समस्त धर्म चेष्टाओं को त्याग कर, नाना प्रेम-विकारों सहित उन्मत्तवत् दीखता है ॥८०॥

[८१]

यो राधामुरलीधराङ्घ्रिकमल-प्रेमैकमात्रीयति
मात्रीयत्यपराङ्गनां स्थिरचरं सत्त्वं सुपुत्रीयति ।

गोत्रीयत्यतितर्ज्जनादिषु महामित्रीयति द्वेषिषु
श्रीवृन्दावनमावसेत् स खलु यः स्वाङ्गेऽन्यगात्रीयति ॥

श्रीराधामुरलीधर के चरण-कमलों का प्रेम ही एकमात्र जिसका जीवन है, जो पर-स्त्री को मातृवत् तथा स्थावर जङ्गम जीवों को सुपुत्रवत् जानता है, अतिशय तर्जनादि करनेवालों को स्वज्ञातिवत् एवं विद्वेषीगणों को महामित्रवत् मानता है, और अपने शरीर के साथ पराये शरीरवत् आचरण करता है, वही श्रीवृन्दावन में वास करने के योग्य है ॥८१॥

[८२]

कृष्णप्रेम-सुधाम्बुधावतितरां मग्नः सदा राधिका–
पदाम्भोरुहदास्यलास्यपदवीं स्वान्तेन सन्तानयन् ।
वैराग्यैकरसेन विश्वमधुरां काञ्चिद्दशामुद्वहन्
श्रीवृन्दाविपिने कदा नु सततोदश्रुर्निवत्स्याम्यहम् ॥

हाय ! श्रीकृष्ण-प्रेमामृत-समुद्र में अति मग्न होकर, श्रीराधाजी के चरण-कमलों की दास्य-लास्यता की आशा को स्व-स्वरूप में सम्यक बढ़ाते हुए,एकमात्र वैराग्यरस द्वारा ही किसी एक विश्व-मधुर-दशा को प्राप्त होकर एवं निरन्तर अश्रुधारा प्रवाह करता हुआ कब मैं श्रीवृन्दावन में वास करूंगा ? ॥८२॥

[८३]

कालिन्दी-पुलिने कदम्बविटपिच्छाया मणीमण्डपे
श्रीराधामुरलीधरौ प्रिय सखीवृन्दैर्वहन्नर्म्मभिः ।
स्रक्ताम्बूलविलेपनादिभिरहो दिव्यैः सदा सेवितौ
रूपौदार्य्यवयोविलासमधुरौ ध्यायामि वृन्दावने ॥

श्रीवृन्दावन के यमुनापुलिन में कदम्बवृक्ष के नीचे मणि-मण्डप में प्रिय सखीवृन्द नर्म्म-परिहास के द्वारा एवं दिव्य माला,

ताम्बूल, विलेपनादि के द्वारा नित्य ही रूपौदार्य-वयस से एवं विलास से मधुर विग्रह श्रीराधामुरलीधर की सेवा कर रही हैं, मैं उसी का ध्यान करता हूँ ।।८३।।

[८४]

कालिन्द्यानन्दसान्द्रामृतसुरससरित्कूलकल्पद्रुमूल-
प्रोन्मीलद्रत्नवल्लीमय-मधुरमहामण्डपे मण्डिताङ्गौ ।
आसीनौ चित्रतूले स्मरमधुर वयोरूपलावण्यलीला -
वैदग्धीपूरमुग्धीकृत-सकलसखीवृन्द-वृन्दावनौतौ ॥

आनन्दघन-अमृत-सुरस-प्रवाहिनी कालिन्दी के किनारे कल्प-वृक्ष के नीचे विराजित रत्नलतामय मधुर महा मण्डप में भूषित-कलेवर श्रीयुगलकिशोर विचित्र तूल-गद्दा पर बैठे हैं, उनकी मधुर वयस, रूपलावण्यता, लीला वैदग्धी आदि के प्रवाह में समस्त सखीवृन्द और श्रीवृन्दावन मुग्ध हो रहे हैं, इस प्रकार श्रीयुगल-किशोर का स्मरण कर ।।८४।।

[८५]

चिज्ज्योतिश्चन्द्रिकात्म-स्फुरदमृतमयोत्फुल्लवल्लीद्रुवृन्दं
वृन्दारण्यं विचित्रैः-शुकपिकशिखिभिर्गीतनृत्यानुयातम् ।
माध्वीकास्वादमत्त-भ्रमदलिपटलीझङ्कृतं मञ्जुकुञ्जे
व्यञ्जन्माधुर्य्यपुञ्जं स्मर विमलसरोवापिकाद्यैः सुहृद्यम् ॥

चित्-ज्योति की ज्योत्स्ना से पूर्ण अमृतमय प्रफुल्लित लता वृक्ष-वृन्द शोभित हो रहे हैं, जो विचित्र शुक, कोकिला व मयूरगणों के नृत्य-गानादि से मुखरित हो रहे हैं, मनोहर कुञ्जों में मधुर-आस्वादन कर उन्मत्त भ्रमर-समूह गुञ्जार कर रहे हैं, विमल सरोवर-तड़ागादिकों में माधुर्य समूह प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार सुन्दर श्रीवृन्दावन का स्मरण कर ।।८५।।

[८६]

स्वानन्दसान्द्रचिज्ज्योतिर्घनं वृन्दावनं वनम् ।
सर्व्वाञ्चात्र तथा ध्यायन् सुधीरोऽधिवसेत् सुखम् ॥

यह श्रीवृन्दावन स्वानन्दघन-चिज्ज्योतिर्मय है एवं यहां समस्त वस्तुएं भी इसी प्रकार हैं। इस भाव से चिन्तन करते हुए सुधीर पुरुष सुख पूर्वक इस श्रीवृन्दावन में वास करते हैं ॥८६॥

[८७]

कामादीनां परवशो यशोऽर्थी त्यक्त-सत्पथः ।
कथं वृन्दावने सिद्धिं न यायाद्यदि तत्कृपा ?॥

कामादि के वशीभूत, यश चाहने वाला एवं सत्मार्ग को त्यागने वाला होकर भी यदि कोई वृन्दावन में श्रीवृन्दावन की कृपा प्राप्त करले, तो कौनसी सिद्धि है जो उसे प्राप्त नहीं हो सकती ?८७

[८८]

अमर्य्यादकृपासिन्धोः पूर्णेन्दोरपि शीतलात् ।
वृन्दारण्यादनन्याद्यभावं भावयसे न किम् ? ॥

असीम कृपा-सिंधु एवं पूर्णचन्द्र से भी सुशीतल इस श्रीवृन्दावन से एकात्म (वृन्दावनमय) श्रेष्ठभावकी क्यों नहीं भावना करता?

[८६]

विशुद्धसत्त्वपरमे श्रीमद्वृन्दावन त्वयि ।
कृतानन्तापराधस्य त्वमेव शरणं मम ॥

हे श्रीमद्वृन्दावन ! परम विशुद्ध सत्वमय आप में यदि मैं अनन्त अपराध भी करूं, तो भी आप ही एकमात्र मेरी शरण हैं ॥

[६०]

वृन्दारण्य ! तवास्मीति वदन्तमपि मां मृषा ।
महापतितमप्यात्मकारुण्यादात्मसात् कुरु ॥

हे श्रीवृन्दावन ! "मैं तुम्हारा हूँ"—ऐसे मिथ्या वचन बोलने

वाले महा पतित मुझ को आप अपनी करुणा से ही अपना कर लीजिए ॥६०॥

[६१]

नित्योच्छृङ्खलकारुण्ये वृन्दारण्येऽधमोऽप्यहम् ।
किमविघ्नं निवत्स्यामि वेत्स्यामि च रसं हरे ॥

नित्य असीम कृपामय श्रीवृन्दावन में अधम होकर भी मैं क्या निर्विघ्नपूर्वक वास कर सकूंगा ? एवं क्या श्रीहरि के रस-विषय को जान सकूंगा ? ॥६१॥

[६२]

दिक्चक्रं प्रसरत्परागपटलैः सद्गंधचूर्णैरिवा-
पूर्णं कुर्वदपूर्वसीधुजलधि-स्यन्दैर्महातुन्दिलम् ।
आच्छन्नं चितिचन्द्रिकालहरीभिः स्वानन्दकोलाहलै-
राक्रान्तं मदखेलिनः खगकुलस्याभाति वृन्दावनम् ॥

दिश-विदिशाओं में सुगंधित चूर्ण की भांति पराग विस्तृत हो रहा है, अपूर्व अमृत-समुद्र के विन्दु-समूह द्वारा विशाल भाग जिसका पूरित होरहा है, चिज्ज्योत्स्ना के द्वारा जो आच्छादित है एवं मदमत्त क्रीड़ा-परायण पक्षियों के स्वानन्द कोलाहल से मुखरित इस श्रीवृन्दावन की महान शोभा हो रही है ॥६२॥

[६३]

नीरन्ध्रं तृणगुल्मपादपलताद्यानन्दसच्चिद्घनैः
श्रीराधारतिकेलिकुञ्जनिकरैरानन्दपुञ्जैर्वृतम् ।
दिव्यानेकसरःसरिद्गिरिवरं दिव्यैर्विहङ्गैर्मृगै-
श्चित्रं मञ्जुलगुञ्जभृङ्गपटलं पश्यामि वृन्दावनम् ॥

सच्चिदानन्दघन-तृण-गुल्म-वृक्षलतादि द्वारा आवृत, आनन्द-पुञ्जमय श्रीराधा-रति केलि-कुञ्जों से परिवृत्त, दिव्य दिव्य सरोवर,

नदी, गिरि आदि से शोभित, दिव्य पत्ती-पशुओं से संचित्रित, एवं मनोहर गुञ्जनकारी भंवरों से विलसित श्रीवृन्दावन के मैं दर्शन करता हूँ ॥६३॥

[६४]

नानारत्नमयस्थलीभिरमितामोदाभिरत्यद्भुतं
फुल्लैर्वल्लिमतल्लिका-तरुवरैर्वीतं रसोल्लासिभिः ।
अत्यानन्दमदाकुलैःखगकुलैरावद्धकोलाहलं
कालिन्द्या रसधारया वलयितं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

अतिशय आनन्ददायक अनेक रत्नस्थली से अति अद्भुत रसोल्लासी प्रफुल्लित लता-श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठ वृक्षों से संशोभित, निरतिशय आनन्दमद से व्याकुल विहङ्गगणों के कोलाहल से मुखरित एवं कालिन्दी के रस-प्रवाह से वेष्ठित श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ ॥६४॥

[६५]

विना स्वात्मारामेश्वर-हरिममुग्धस्त्रिभुवने
युवत्या भावैः को वत सुरवरो वा मुनिवरः ।
स्थितस्तस्मात्तस्याश्चकितचकितो दूरतरतः
सदा वृन्दारण्ये निवस रसनोपस्थ-विजयी ॥

स्वात्मारामेश्वर श्रीहरि के बिना त्रिभुवन में ऐसा और कौन सुर श्रेष्ठ व मुनि श्रेष्ठ है, जो स्त्री के भावों में मुग्ध नहीं होता ? इसलिए इस स्त्री से अत्यन्त सावधानता पूर्वक दूर रह कर जिह्वा तथा उपस्थ को जीत कर श्रीवृन्दावन में वास कर ॥६६॥

[६६]

महापापाचारे निरवधि महादुर्म्मतिशते
महाकामक्रोधाद्यतिपरवशे दम्भवपुषि ।

न सत्संसर्गैकप्रणयिनि महद्धर्मविमुखे
मयि श्रीमद्वृन्दावन ! कुरु कृपां नान्यशरणे ॥

महा पापाचार, नित्य महा दुर्मति-परायण, महा काम-क्रोध आदि में बंधा हुआ, दम्भ-प्रकृति, खोटे सङ्ग करनेवाला, एवं महान धर्म के विमुख होते हुए भी हे श्रीवृन्दावन ! मैं आपकी अनन्य शरण हूँ, आप मुझ पर कृपा कीजिए ॥६६॥

[६७]

अत्यन्तोद्धत धावदिन्द्रियगणो यः सर्वदासत्पथे-
ष्वेकस्मिन्निमिषेऽपि न स्मृत-महानन्दाब्धिराधाप्रियः ।
सद्धर्म्मैः सदुपासनैर्विरहितस्त्यक्तोऽखिलैः सद्गुणै -
र्हा हा सोऽहमनल्पमोह उपयाम्येकं तु वृन्दावनम् ॥

हाय ! सदा सर्वदा असत्पथ-समूह की ओर ही उद्धत इन्द्रियां धावित हो रही हैं, एक निमेष के लिए भी महानन्द सागर श्रीराधापति का स्मरण नहीं करतीं, मैं सद्धर्म तथा सदुपासना से रहित, अखिल सद्गुणों से रहित तथा महामुग्ध हो रहा हूँ, किन्तु एकमात्र श्रीवृन्दावन की ही शरण ग्रहण करता हूँ ॥६७॥

[६८]

वैराग्येण समुत्कटेन विषयस्पर्शं महादुर्विष -
ज्वालावत् कलयन्मनागपि न तैः सङ्गेन रङ्गं दधत् ।
पाणौ न्यस्य कपोलमश्रुसलिलैः संक्षालयन् राधिका -
कृष्णापार-कृपावधारणधरोऽध्यासीय वृन्दावनम् ॥

तीव्र वैराग्यव्रत अवलम्बन के विषय को स्पर्श करने को भी महा दुर्विष के समान जानकर, उसके साथ विन्दुमात्र भी सम्बन्ध न रखकर, कपोल पर हाथ रख कर आंसू बहाते हुये श्रीराधाकृष्ण की असीम कृपा अवधारण पूर्वक ही मैं किसी प्रकार श्रीवृन्दावन में वास कर सकूं — यह मेरी प्रार्थना है ॥६८॥

[६६]

नैवालोकित-लोकवेद पदविनर्पेक्षित-स्वप्रिय –
द्वन्द्वैकान्तरसाप्रविष्टहृदयाशेषातिधन्योत्तमः ।
राधाकृष्ण रसान्मुहुः पुलकितोनित्याश्रुधाराधर –
श्चित्रप्रेमविकारवान् वत कदा नन्दाभि वृन्दावने ।

हाय ! लोक मर्यादा व वैदिकमत की ओर कभी भी ध्यान न देकर, अपने प्रियतम युगलकिशोर के एकान्तरस से रहित हृदय वाले व्यक्तियों की अपेक्षा छोड़ कर, अतीव धन्य भाग होकर एवं श्रीराधाकृष्ण-रस में बार-बार पुलकित, नित्य अश्रुधारा प्रवाहित करता हुआ, तथा विचित्र प्रेम विकारशील होकर मैं कब श्रीवृन्दावन में आनन्द प्राप्त करूंगा ? ।।६६।।

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का अष्टम शतक समाप्त हुआ

———

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

नवमं शतकम्

[१]

हसन्नृत्यन् गायन्नतिपुलकितोऽस्यश्रुनयनो
मुहुः स्तम्भ स्वेदाद्यतिमधुरभावैश्च वलितः ।
कदा वृन्दारण्यं निजदयति-राधा-मधुपती
मुदाध्यायं ध्यायं चिरमधिवसाम्युन्मदरसः ॥

हास्य, नृत्य तथा गान करते करते, अतिशय पुलकित तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से बार बार स्तम्भ, स्वेद आदि अति मधुर भाव-युक्त होकर, अपने प्रियतम श्रीराधापत्ति का ध्यान करते हुए रसोन्मत्त होकर मैं कब दीर्घकाल तक श्रीवृन्दावन का वास करूंगा ?

[२]

श्रीगांन्धर्वा-चरणकमलद्वन्द्वलावण्यलीला –
माधुर्य्यैकाम्बुधिमतिमदं गाहतां कर्हि चेतः ।
वृन्दारण्ये तृणमिव परित्यज्य सर्वामखर्वां
निर्वाणादि-श्रियमपि कदा वासनिर्वाहकः स्याम् ॥

श्रीराधा-चरण-कमलों के लावण्यलीला-माधुर्य सागर में मेरा चित्त कब अतिशय मत्त होकर अवगाहन करेगा ? समस्त महत्-

वस्तुओं को यहां तक कि मोक्षादि सम्पत्ति को भी तृणवत् परित्याग करके श्रीवृन्दावन में कब वास कर जीवन अतिवाहित कर सकूंगा ? ॥२॥

[३]

श्रीमञ्जीर-ध्वनि-मधुरया श्रीपदाम्भोजलक्ष्म्या
माधुर्य्यौघैरुपरि च तले रम्यया गौरशोणैः ।
स्फूर्जत्पादाङ्गदमणिरुचा दिव्यपादाङ्गुलीयै –
र्भ्राजन्त्याह्नन्निजवनचरद्राधया वै हृतं मे ॥

सुन्दर मधुर ध्वनि युक्त मञ्जीर-शोभित श्रीपाद-पद्म की शोभा से, ऊपरि-भाग में गौरकान्ति तथा तल-देश के रक्तवर्ण माधुर्य-प्रवाह से स्फूर्तिशील पादाङ्गद की मणिकान्ति से तथा दिव्य पादाङ्गुली-समूह से रमणीय श्रीराधा ने निज बन में विचरण करते-करते मेरे मन को चुरा लिया है ॥३॥

[४]

राधापादाम्बुजरस-महामाधुरीमत्त-चेत्तो –
भृङ्गो निर्भङ्गुर-परिमिलल्लोक-वेद-प्रसङ्गः ।
कञ्चिद्भावंमधुरमधुरं भावयन् विश्वचेतो –
दृष्ट्याकृष्ट्याकृतिरपि भवान्यत्र वृन्दावने किम् ?

श्रीराधाजी के चरण-कमलों के रस के महा माधुर्य में चित्त भ्रमर को उन्मत्त करके, लोक-प्रसङ्ग तथा वेद-प्रसङ्ग को भी निरतिशय तोड़ कर, किसी मधुरातिमधुर-भाव की निरन्तर चित्त में चिन्ता करते-करते एवं विश्व के चित्त एवं नैनों को आकर्षण करने वाली आकृति-विशिष्ट धारण कर क्या मैं श्रीवृन्दावन में रह सकूंगा ? ॥४॥

[५]

तत् कैशोरं ताः सुगौराङ्गभङ्गी –
स्तत् सौन्दर्यं ताः सुधाशीतसूक्तीः ।
तांस्तान् भावानश्रुरोमोद्गमादीन्
श्रीराधायाः संस्मरन् को न मुह्येत् ? ॥

श्रीराधाजी का वह कैशोर, वह सुगौर-अङ्गों की विविध भङ्गी, वह सौंदर्य, वह अमृतवत्-शीतल सुन्दर-बोलिन तथा उन सकल अश्रु-रोमाञ्च आदि भावों को स्मरण कर कौन नहीं मुग्ध होगा ?

[६]

व्याकोश-कनकपङ्कज-कोशमिवाऽतन्तचन्द्रिकावर्षि ।
स्मर राधामुखमिन्दीवररुचि-हरिलोभ्य-सान्द्रमकरन्दम् ॥

नीलकमल-वर्ण श्रीहरि जिसके सान्द्र मधुररस में लोभायमान रहते हैं, अनन्त प्रकाश्यमान् प्रफुल्लित-स्वर्णपद्म के अन्तरीय-कोशवत् श्रीराधा के मुखचन्द्र का स्मरण कर ॥६॥

[७]

चिदचिद्द्वैत-प्रोञ्छन-कनकोज्ज्वलसान्द्रचन्द्रिकावर्षि ।
श्रीराधामुखचन्द्रं कृष्णचकोरैकजीवनं स्मरत ॥

चैतन्य और जड़ के भेद को दूर करनेवाले स्वर्णोज्ज्वल चन्द्रिका प्रसारित करने वाले, श्रीकृष्ण-चकोर के एकमात्र जीवन स्वरूप श्रीराधिका मुखचन्द्र का स्मरण कर ॥७॥

[८]

परिपूर्णमधुरमधुर-प्रेमसुधासार-सुन्दराकृतये ।
नित्यकैशोर्यै मम नम एतद्वृन्दावनेश्वर्यै ॥

परिपूर्ण मधुरतम प्रेमामृत की सार सुन्दर आकृति विशिष्ट श्रीवृन्दावनेश्वरी नित्यकिशोरी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥८॥

[६]

स्वाद्यप्रेममहारससार-सुगौराङ्गचन्द्रिका-जलधीन् ।
राधायाः स्मर परमोच्छलितांश्चिदचिद्द्वयं समाच्छाद्य ॥

चित्-जड़ के भेद को आच्छादन करने वाले परम उच्छलित श्रीराधा के आस्वाद्य महा प्रेमरस-सार सुगौर चन्द्रिका-समुद्र को स्मरण कर ॥६॥

[१०]

अप्राकृत-नवतरुणी-रूपतृणीकारि-मोहिनीवृन्दैः ।
पथि पथि मूर्ध्निधृताङ्घ्रिर्वनभुवि राधाममेश्वरी स्फुरति ॥

अप्राकृतिक नवीन युवतियों के रूप को तृणवत् तुच्छ करने वाली, एवं जिसके चरण वनभूमि में विचरण करते समय मोहिनी सखियों द्वारा शीश पर धारण किए जाते है, वह मेरी स्वामिनी श्रीराधा प्रकाशित हो रही हैं ॥१०॥

[११]

त्रैलोक्य मोहिनीभिर्नवतरुणीभिर्महाविदग्धाभिः ।
आराध्यां स्मर वृन्दाविपने सर्वोज्ज्वलां राधाम् ॥

त्रिभुवन को मोहित करने वाली महा विदग्धा एवं नवतरुणी-वृन्दों की आराध्य सर्वोज्ज्वल श्रीराधाजी का श्रीवृन्दावन में स्मरण कर ॥११॥

[१२]

उन्मदमधुरप्रेमानन्दमरन्दैकसिन्धु निःस्यन्दि ।
राधापदारविन्दं विश्रमयन्नौमि किङ्करीवृन्दम् ॥

उन्मद, मधुर, एकमात्र प्रेमानन्द-मधुर समुद्र प्रवाहित करने वाले श्रीराधा के चरणकमलों में विश्राम पाने वाली दासीगणों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

[१३]

अपि सर्वधर्महीनः सर्वकुकर्मावलेश्च निर्माता ।
राधेति सिद्धमन्त्रंद्वयक्षरमुच्चार्य किं न सिध्येयम् ? ॥

सर्व धर्महीन होकर भी, सब कुकर्म करते हुए भी, "राधा" इन दो अक्षरों का सिद्ध-मन्त्र उच्चारण करके क्या तू सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता ? ॥१३॥

[१४]

अतिसाहसमाचरितं विरुध्य गुरुशास्त्रविद्वर्यैः ।
त्वयि वृन्दावन ! वासायेन्द्रियवशमप्यतो न हि त्यज माम् ॥

हे श्रीवृन्दावन ! आप में वास करने के लिए इन्द्रियों के पराधीन होकर मैंने श्रेष्ठ गुरु तथा शास्त्र-वेत्ताओं से विमुख-आचरण करके अत्यन्त साहस का परिचय दिया है, अतः मुझे त्याग मत देना ॥१४॥

[१५]

त्वयि कृत-कुकर्मकोटेरपि चाण्डालान्महाधमस्यास्य ।
ईशोऽपि नैव शरणं हा वृन्दारण्य ! किं विधास्यसि मे ? ॥

हा श्रीवृन्दावन ! चाण्डाल से भी महाअधम मैंने आपके प्रति कितने कोटि कुकर्मों का आचरण नहीं किया है ? ईश्वर की भी शरण में ग्रहण नहीं करता, आप मेरा कुछ विधान करेंगे क्या ? ॥१५॥

[१६]

अतिदुर्लभपद आशावासाय सा हि तु दुर्घटा त्वयि मे ।
कृतसर्वेन्द्रियशत्रोर्हा वृन्दारण्य ! किं नु मे भविता ॥

हे श्रीवृन्दावन ! अति दुर्लभ पद (धाम) में वास करने की मेरी आशा है, किन्तु सब इन्द्रियों के शत्रु होने से वह भी मेरे लिए अति कठिन हो रहा है; हाय ! मेरी क्या गति होगी ? ॥१६॥

[१७]

अस्तु मे नरककोटिः सिध्यतु नेष्टं न चेश्वरो दयताम् ।
श्रीराधाचरणाम्बुज मधुरिमलोभस्तु नो भवेच्छिथिलः ॥

मुझे कोटि नरक भोगने पड़ें, मनोरथों की प्राप्ति न हो, अथवा ईश्वर मुझ पर दया न करें, किन्तु श्रीराधा-चरण-कमलों में मेरी लालसा कभी कम न हो ॥१७॥

[१८]

मञ्जीरमञ्जुतरशिञ्जितरञ्जिताङ्घ्रि –
शोभा हरेरपि मनो-दृगपारलोभा ।
वृन्दावन-भ्रमणभङ्गि-मनोहराङ्ग्याः
प्रेमातुरे स्फुरतु मे हृदि राधिकायाः ॥

श्रीवृन्दावन में भ्रमण करते हुए मनोहर-अङ्गी श्रीराधाजी के नूपुरों की मनोहर-ध्वनियुक्त चरणों की शोभा श्रीहरि के मन एवं नेत्रों को भी लुभानेवाली है, वही मेरे प्रेमातुर-हृदय में स्फुरित हो।

[१९]

कैशोरकान्ति–मदभङ्गि–तरङ्गितोरु–
माधुर्यसिन्धुबुडिता हरिभावमूर्त्तिः ।
भ्रूभङ्गिमोन्नटनरङ्गदनङ्गकोटिः
श्रीराधिका रसमयी हृदि मे चकास्तु ॥

कैशोर-अवस्था के कान्ति-मद-भङ्गी-रूप-तरङ्गों से परिपूर्ण माधुर्य-समुद्र में निमग्ना जो हरि-भाव मूर्त्ति है, एवं जिसकी भ्रू-भङ्गिमा के इशारे से ही अनन्त कोटि कामदेव नाचने लगते हैं, वही रसमयी श्रीराधिका मेरे हृदय में प्रकाशित हों ॥१९॥

[२०]

अङ्गेऽङ्गे यः सदात्युच्छलति वलति यो दिव्यकैशोररूपे
यो दृग्भङ्गी-सलज्जस्मित-मधुरतर-श्रीमुखेन्दुच्छटासु ।

योे वाऽश्चर्योक्ति गत्याद्यखिलरसधुराचेष्टिते राधिकाया –
स्तत्तन्माधुर्यसिन्धौ बुड़तु मम मनो भावमाधुर्यधुर्यम् ॥

सदा सर्वदा जिसका प्रत्येक अङ्ग उच्छलित हो रहा है, दिव्य-कैशोर-रूप से जो नित्य वृद्धिशील हो रहा है, नैन-भङ्गिमायुक्त लजीली हाँसी से मधुरतर शोभामय मुखचन्द्र की कान्ति से जो प्रकाशित हो रहा है, एवं आश्चर्यमय बोलनि-चलन आदि की अखिल रसमयी चेष्टाओं से जो स्फुरति हो रहा है, श्रीराधा के उस माधुर्य-समुद्र में मेरा भाव-माधुर्ययुक्त मन निमग्न हो ॥२०॥

[२१]

तत कैशोरं महामोहन–मधुरदशाश्चर्यवत्तत्तदङ्गम्
साश्चर्यापाङ्गभङ्गी स च मधुरह्रिया मोहनो मन्दहासः ।
तत् सौन्दर्यं स कान्तिप्रसर उरुविधास्तेऽङ्गभङ्गोत्तरङ्गा-
स्तास्ताः श्यामानुरागप्रथमविकृतयो भान्तु मे राधिकायाः ॥

श्रीराधाजी का वह कैशोर, महामोहन मधुर दशा के आश्चर्यमय वे अङ्ग, वह आश्चर्यमय अपाङ्गभङ्गी, वह मधुर लज्जायुक्त मोहन मंद-हास्य, वह सौन्दर्य, वह कान्ति-विस्तार, वह बहुविधि अङ्गभङ्गी-तरङ्ग-समूह, एवं वह श्यामानुराग की प्रथम विकार-राशि मेरे हृदय में प्रतिभात हों ॥२१॥

[२२]

सौन्दर्यानन्तपूरैः कनकमणिशिलाघृष्टकाश्मीरगौरै –
रङ्गैरङ्गै किरन्ती मधुरतर-महाकान्तिसिन्धूननन्तान् ।
श्यामप्रेमातिमाधवी-मदविकृति-विचित्राकृतिः सर्वचेष्टा –
माधुर्यैरद्भुतैर्विस्मितमनसि सदोदेतु राधेश्वरी मे ॥

अनन्त सौन्दर्य प्रवाहमय, कनक-मणि शिला द्वारा घृष्ट-कुङ्कुम के समान गौर-कान्तियुक्त मधुरतर अनन्त-महा-

कान्ति समुद्र प्रति-अङ्ग से विकीरणकारिणी एवं श्यामसुन्दर के प्रेमातिशय्य रूप-मधुमद के हेतु विचित्र आकृतिधारिणी प्राणेश्वरी श्रीराधा की सर्वचेष्टाओं का अद्भुत माधुर्य सर्वदा मेरे मन को विस्मित किया करे ॥२२॥

[२३]

सर्वात्युत्तमधामतोऽप्युपरि भात्यानन्दसाम्राज्यभृत् –
वृन्दारण्यमिहैव भाति सकलाश्चर्यं किशोरद्वयम् ।
तत्प्राणात्ममहासुभावललिताद्यालीनिदेशे स्थितो
योऽन्तः स्वेष्टतनुः स्फुरन् रसमयं चेष्टेत तस्मै नमः ॥

समस्त अत्युत्तम धामोंके ऊपर आनन्द साम्राज्ययुक्त श्रीवृन्दावन शोभित हो रहा है, इसी स्थान पर ही सर्वाश्चर्यमय श्रीयुगलकिशोर विराजमान हैं, उन श्रीयुगलकिशोर को प्राण स्वरूप मानने वाली जो श्रेष्ठभावयुक्ता श्रीललितादि सखियाँ हैं। उनकी आज्ञानुसार चलते हुए जो अन्तर-स्वीय-अभीष्ट स्वरूप देह में स्फूर्तियुक्त होकर रसमय चेष्टावान् हो सकता है, उसको नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

[२४]

मधुर-रणन्मणिनूपुर-राधापादारविन्द-सौन्दर्यम् ।
वृन्दावनभुवि सन्ततमनु चिन्तयतो मम क्षणा यान्तु ॥

मधुर शब्दायमान मणि-नूपुरों से भूषित श्रीराधाजी के चरण-कमलों के सौन्दर्य का निरन्तर चिन्तन करते करते इस श्रीवृन्दावन में मेरा समय व्यतीत हो ॥२४॥

[२५]

सुस्निग्धकान्तिधारा-परिमल-सौन्दर्यसौकुमार्याद्यैः ।
तदमेयचरणकमलं राधायाः सुकलनूपुरं स्फुरतु ॥

सुस्निग्ध कान्तिधारा, परिमल, सौन्दर्य एवं सौकमार्य्य

आदि गुणयुक्त श्रीराधाजी के उन निनादयुक्त-नूपुर-भूषित-अनुपम चरण-कमलों की मुझे स्फूर्ति हो ॥२५॥

[२६]

अरुणतलमुपरि गौरं मधुरैर्लसितैर्हरेर्मनश्चौरम् ।
राधायास्त्वतिसुन्दर चरणसरोजं मनो जपतु ॥

तलवों में अरुणता, ऊपर के भाग में गौरवर्ण एवं मधुर लास्य के द्वारा श्रीहरि के मन को चुराने वाले, श्रीराधाजी के सुन्दर चरण-कमलों को मेरा मन जपता रहे ॥२६॥

[२७]

पादाङ्गुलीय-पादाङ्गद-नूपुररत्नरोचिषां वीचीः ।
राधापदाब्जईचो नखमणिचन्द्रोच्छलच्छटाच्छुरिताः ॥

श्रीराधाजी के चरणकमलों की अङ्गुलियों के पादाङ्गद तथा नूपुरों की रत्नमय किरणों से नख-मणिचन्द्र से उच्छलित कान्तिकी उद्भासित तरंगों को देखने की मैं इच्छा करता हूँ ॥२७॥

[२८]

कृष्णेन्दिन्दिरलोभ्यं पुरुसौरभ्यं न हीन्दिरालभ्यम् ।
सान्द्रानन्दमरन्दं पदारविन्दं स्मरामि राधायाः ॥

श्रीकृष्ण-मधुकर को लुभानेवाले किन्तु लक्ष्मी को अलभ्य, ऐसे अत्यन्त सौरभ्ययुक्त तथा सान्द्रानन्दरसपूर्ण श्रीराधा के चरण कमलों को स्मरण करता हूँ ॥२८॥

[२९]

अतिमृदुलाङ्गुलिपल्लव विलसन्नखचन्द्रमण्डलं मधुरम् ।
मणिमञ्जीरमनोहरचरणयुगं मे चकास्तु राधायाः ॥

अत्यन्त कोमल अङ्गुली रूप पल्लवयुक्त, नखचन्द्रों से भूषित, मधुर, मणिनूपुरों से मनोहर श्रीराधाजी के चरणयुगल मेरे हृदय-मंदिर में प्रकाशित हों ॥२९॥

[३०]

राधा-चरण-रणन्मणि नूपुरमूकीकृतां हरेर्मु रलीम् ।
विफलित-तत्तत्फुत्कृति-मखिलसखीसार्थहासिनीं स्मरत ॥

श्रीराधाजी के चरणकमलों के नूपुरों के शब्द से मुरली के मूक (शब्द रहित) हो जाने से जब श्री हरि बार-बार फूंकने पर भी व्यर्थ-मनोरथ हो गए, तब समस्त सखी-मण्डली हंसने लगी—यह लीला तू स्मरण कर ।।३०।।

[३१]

स्पर्शयदाननलोचन हृदयेजिघ्रन्मुहुर्मुहुः किमपि ।
राधा-सुरभि-सुशीतल-पदकमलं धाम शोभते श्यामम् ॥

श्रीराधाजी के सुगन्धित सुशीतल चरण-कमलों का—अपने वदन, लोचन तथा हृदय को स्पर्श कराके बारबार घ्राण करते हुए कोई अनिर्वचनीय श्याम-विग्रह विराजमान है ।।३१।।

[३२]

राधापदारविन्दो च्छलदतिमाधुर्य्यसिन्धुनिःस्यन्दैः ।
मम हृदयं लयमयतां वृन्दारण्ये कदोन्मदप्रणयम् ॥

श्रीराधाजी के चरण-कमलों से उच्छलित माधुर्य सागर के बिन्दु-समूह द्वारा कब मेरा प्रेमोन्मत्त हृदय श्रीवृन्दावन में लय होगा ? ।। ३२ ।।

[३३]

वृन्दावनेऽतिमधुराद्भुतलीला-रणित-मञ्जु-मञ्जीरम् ।
प्रसरन्नखमणिभासं पदविन्यासं स्मरामि राधायाः ॥

श्रीवृन्दावन में अति मधुर अद्भुत-लीलावेश से मनोरम नूपुर-ध्वनियुक्त शोभित हो रहे हैं, नखमणियों की छटासे चारों दिशाओं को आलोकित करनेवाली श्रीराधाजी के पादविन्यास का मैं ध्यान करता हूँ ।।३३।।

[३४]

वृन्दाकाननकुञ्जवेश्मसु सदा खेलत् किशोरद्वयं
गौरश्यामलमुन्मदेन मदनेनात्यन्तलोलं भजे ।
स्वीय-स्वीय-कला-विचित्रसुरतक्रीड़ा-प्रबन्धैर्मिथो
विस्मेरीकृत-मोहित-प्रहसित-प्रोत्साहितोन्मादितम् ॥

श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में निरन्तर क्रीड़ा-परायण गौरश्यामात्मक श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ, वे उन्मादि-मदन द्वारा अति चञ्चल हो रहे हैं, एवं अपनी-अपनी कला, विचित्र सुरत-क्रीड़ादि द्वारा एक दूसरे को विस्मयान्वित तथा मोहित कर रहे हैं, हंसा रहे हैं, प्रोत्साहित और उन्मादित कर रहे हैं ॥३४॥

[३५]

श्यामेनानृजुना किमालि ! मम किं धत्से सदा तादृशं
चन्द्रावल्यतिफुल्लितेन मम किं तादृग दधासि श्रुतौ ।
विष्वकूचञ्चलचञ्चलेन मम किं तादृग् विना ध्यायसे
राधेत्यालिगिरा चकास्त्यतिरुषा नीलाम्बुजैस्तां घ्नती ॥

श्रीराधाजी ने कहा—हे सखि ! कुटिल श्यामसुन्दर का क्या प्रयोजन है ? उसे तुम हृदय में क्यों धारण करती हो ? यदि चन्द्रावलि को अति आनन्द मिलता है तो हमें क्या ?" सखी ने कहा—"यह चन्द्रावली (स्वर्णहार एवं लाल मुक्ता) आप फिर कानों में क्यों धारण कर रही हो ?" श्रीराधाजी ने फिर कहा—"सर्व प्रकार अति चञ्चल उस (श्यामसुन्दर) से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ", " तो ऐसे (चञ्चल) श्याम को छोड़ कर किसी अन्य का ध्यान करो "—सखी के इस प्रकार प्रत्युत्तरों को सुनकर श्रीराधाजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर उस सखी को नीलपद्म से आघात किया—इस शोभा का ध्यान कर ॥३५॥

[३६]

ब्रह्माद्या अमराः सुरासुरनरा येऽन्ये च योगीश्वरा
नो मायां युवतीमयीं भगवतस्तत्तुं समुत्सेहिरे ।
क्षोदीयांस्त्वहमेतयास्मि विहितश्चाण्डालकः
स्वीकारे तव साधुवृन्दतिलकैर्वन्द्येय वृन्दाटवि ॥

ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवतागण, इन्द्रादि साधारण देवता, असुर या मनुष्य अथवा योगीश्वर कोई भी भगवान् की युवतीरूपमाया का पार नहीं पा सकता । अति क्षुद्रतर मैं भी इसी मायाके चाण्डाल-वत् क्रूरकर्मों का आचरण कर रहा हूँ । हे श्रीवृन्दावन ! अब आप मुझे स्वीकार करें तो साधुगण भी मुझे वन्दना करने लगेंगे ॥३६॥

[३७]

विचित्रमणिमौक्तिकप्रकरगुच्छ-नाना-मणि-
च्छटौघकनकस्फुरन्मुरलिकां निधायाधरे ।
सदा गृणति राधिकोज्ज्वल-यशांसि वृन्दावने
मनो मम मनोहरे क्वचन धामनि श्यामले ॥

विचित्र मणिमुक्ता समूह तथा नाना मणिकान्तियुक्त सुवर्ण खचित मनोहर मुरली अधर पर धारण कर श्रीवृन्दावन में जो निरन्तर श्रीराधाजी का उज्ज्वल यश गान करता है, वह मनोहर श्याम-विग्रह मेरे मन में अवस्थान करे ॥३७॥

[३८]

एकैकाङ्गप्रोच्छलत्स्वर्णगौर-स्निग्धानन्तज्योतिराच्छादिताशा ।
वृन्दारण्ये रूपशोभैकसीमा कापि श्यामात्मैकचोरी किशोरी ॥

प्रत्येक अङ्ग की उज्ज्वल-स्वर्ण-गौर-स्निग्ध अतीव-ज्योति से दिशाओं को जो आच्छादन कर रही है एवं श्रीवृन्दावन में रूप-शोभा की शेष सीमा है वह किशोरी किसी श्याम-आत्मा की चोरी करके विराजमान हैं ॥३८॥

[३९]

हेमाम्भोज-द्वितय-मुकुलापूर्ण-हेमैकचन्द्रा
मध्ये शून्या तत उरुतरानन्तकान्ति किरन्ती ।
वृन्दारण्ये कनकलतिका श्याममेकं तमालं
दिव्यं काऽप्युन्मदरसमहो वेष्टते कुञ्जसीम्नि ॥

हाय ! श्रीवृन्दारण्य के कुञ्जों में सुवर्णकमलरूप दो मुकुल (स्तन) और एक पूर्णचन्द्र (वदन) धारण करनेवाली, तथा मध्य-देश में अति कृश होने से अतीव कान्ति प्रसारित करते हुए एक स्वर्णलतिका (श्रीराधाजी) किसी एक दिव्य-उन्मदरस श्याम-तमाल (श्रीश्यामसुन्दर) को आलिङ्गन कर रही है ॥३९॥

[४०]

कर्णालङ्कृतकर्णिकारकुसुमं संचुम्ब्य बिम्बाधरं
गायद्वेणुसुगन्धवेणुवलित-श्यामाभिरामाकृति ।
चूड़ालोल-शिखण्डमुज्ज्वलतड़ित्पीताम्बरं सुन्दरं
श्रीराधारतिलम्पटं स्मर मनस्तद्धाम वृन्दावने ॥

कर्णिकार-कुसुम के कुण्डल धारण करने वाले तथा जिनके बिम्बाधर (गोपीगणों द्वारा) सदा चुम्बनीय हैं, जो वेणु बजा रहे हैं, सुगंध पुष्प-वेणु द्वारा जिनका श्याम शरीर अत्यन्त मनोहर शोभा दे रहा है, जिनके चूड़ा में मोर-पुच्छ शोभित है, जो उज्ज्वल तड़ित्वर्ण का पीताम्बर धारण कर रहे हैं, हे मन! उन्हीं श्रीराधा-रतिलम्पट सुन्दर विग्रह (श्रीश्यामसुन्दर) को श्रीवृन्दावन में स्मरण कर ॥ ४० ॥

[४१]

जीयादेकं दिशि दिशि महागौरकान्तिप्रसारं
सारं प्रेमामृतरस-महावारिधेरत्युदारम् ॥

वृन्दारण्ये विविधकलया मोहिनीवृन्द-सेव्यं
धाम श्यामच्छबि नवयुवैकात्मचोरं किशोरम् ॥

चारों ओर महागौरकान्ति विस्तारकारी, प्रेमामृत-रस के महा समुद्र का अति महासार-स्वरूप, श्रीवृन्दावन में अनेक कलाओं द्वारा मोहिनी-(सखी-) वृन्दों से सेवित, श्यामवर्ण नवयुवक की चित्तचोर श्रीकिशोरी जी की जय हो ॥४१॥

[४२]

नित्योन्मीलन्मधुरमधुराश्चर्यकैशोर लक्ष्मया
नित्योद्वर्द्धि स्मररसमदादङ्ग वैवश्यभाजोः ।
श्रीगान्धर्वामुरलीधरयोः पश्य सौभाग्यधाम्नो–
वृन्दारण्ये मधुरमधुरा दृष्टिवागङ्गचेष्टाः ॥

नित्य-प्रकाशमान मधुर-मधुर आश्चर्य-कैशोर की शोभा द्वारा नित्य वर्द्धनशील कामरस-मद में वशीभूत अङ्गोंयुक्त श्रीगांधर्वा एवं मुरलीधर सौभाग्यशील युगल-विग्रह की श्रीवृन्दावन में अवलोकन, बोलिन तथा अङ्गचेष्टाओं का दर्शन कर ॥४२॥

[४३]

देहान्तःकरणेन्द्रियादि-सकलं तीव्रानुरागान्मिथः
संप्राप्तैक्यमिवावहन् नवनवात्याश्चर्यकैशोरकम् ।
धामद्वन्द्वमतीव मोहनमहो तद्गौरनीलं मुदा
वृन्दारण्यकदम्बकुञ्जकुहरे कन्दर्पलोलं भजे ॥

श्रीवृन्दावन के कदम्ब-कुञ्जों के भीतर तीव्र अनुरागवश जिनके देह-अन्तःकरण इन्द्रियादिक समस्त सम्यक प्रकार से एकता को प्राप्त होरहे हैं, उन नव-नवायमान अति आश्चर्यमय किशोर-अवस्था-युक्त अतीव-मोहन गौरनील छबियुक्त एवं कामरस में चञ्चल युगलकिशोर का मैं आनन्दपूर्वक भजन करता हूँ ॥४३॥

[४४]

पूर्णस्वर्ण–सुगौरकान्तिजलधेस्तुङ्गैस्तरङ्गैर्दिशः
सिञ्चन्ती नवयौवनोन्मदकला सौन्दर्य-सम्मोहनी ।
स्वाद्यप्रेम महारसात्मकतनुः सा श्यामसञ्जीवनी
विद्या काऽपि चकास्तु मे हृदि सदा वृन्दावनालङ्कृतिः ॥

पूर्ण-स्वर्ण-सुगौर-कान्ति-समुद्र की अत्युच्च तरङ्गों से दिशाओं को सिञ्चनकारी, नवीन यौवन के कला-विलासादि के सौन्दर्य से उन्मत्त एवं मोहित करने वाली, आस्वादनीय-महाप्रेम-रसात्मक-विग्रह, श्रीवृन्दावन की भूषण–स्वरूपिणी, श्याम–सञ्जीवनी कोई अपूर्व-विद्या (श्रीराधाजी) नित्य ही मेरे हृदय में विराजमान रहें ॥

[४५]

जयति जयति राधा प्रेमसारैरगाधा
जयति जयति कृष्णस्तद्रसापारतृष्णः ।
जयति जयति वृन्दं तत्सखीनां द्वयैक्यं
जयति जयति वृन्दाकाननं तत्स्वधाम ॥

अगाध प्रेमसार-रूपिणी श्रीराधाजी की जय हो, जय हो ; तदीय-रस के लिए अपार तृषातुर श्रीकृष्ण की जय हो, जय हो ; इन युगल के मिलाप की आकांक्षा करने वाली सखीवृन्दों की जय हो, जय हो ; एवं उनके स्वीय-धाम श्रीवृन्दावनकी जय हो, जय हो;

[४६]

नित्याद्भुताद्भ तरसोत्सव-नित्यसङ्ग –
नित्यार्त्त नित्यनव नित्यकिशोरयुग्मम् ।
तद्गौरनीलमतिमोहनरूपशोभं
वृन्दावने किमपि लोभयते मनो मे ॥

नित्य अद्भुततम रसोत्सवों से पूर्ण, नित्य मिलन व नित्यविरह

दशायुक्त, नित्य नवीन, नित्य किशोर एवं मोहिनी शोभायुक्त कोई अनिर्वचनीय गौरनीलात्मक युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में मुझे लुभायमान कर रहे हैं ॥४६॥

[४७]

विचित्र-नवचातुरीकृत विचित्ररत्युत्सवं
विचित्र-तनुकान्तिभिः कृतविचित्रकुञ्जोदरम् ।
विचित्र-नवकेशभृन्नवविचित्रकैशोरकं
विचित्रयति मे मनो द्वयमिदं विचित्रं महः ॥

जो विचित्र नवचातुरी के द्वारा विचित्र रति-उत्सव मनाते हैं, एवं विचित्र देहकान्ति द्वारा कुञ्जों को विचित्रित करते हैं, वे विचित्र नवीन केशों को धारण करने वाले, विचित्र कैशोरयुक्त विचित्र युगलकिशोर मेरे मन को विचित्रित करें ॥४७॥

[४८]

चैतन्यामृतचन्द्रिकाम्बुधिमतिस्वच्छं प्रकृत्यन्तकै
द्वैतैः शून्यमनन्तपार-परमानन्दैकसारं स्मर ।
ऐशं ज्योतिरिहानुभूयकलय श्रीकामबीजात्मकं
ज्योतिस्तत्र घनं महामधुरिम प्रेक्षस्व वृन्दावनम् ॥

प्रकृति के पार द्वैतभाव-शून्य अनन्त अपार परम-आनन्द के सार तथा अति स्वच्छ-चैतन्यामृत-ज्योत्सनामय-समुद्र का स्मरण कर। इस स्थान पर ऐश्वरिक-ज्योति का अनुभव करके उसके परे श्रीकाम-बीजात्मक महा माधुर्यमय ज्योति का तथा श्रीवृन्दावन का दर्शन कर ॥४८॥

[४९]

नानावर्णमणिच्छटाम्बुधिघनं वल्लिद्रुमैः शोभितं
शाखापल्लवपत्रगुच्छमुकुलैः पुष्पैः फलैश्चाद्भुतैः ।

नानारत्नमयैः खगैर्मृगकुलैः कीरैर्मयूरैः पिकै–
गुंञ्जद्भृङ्गगणैः सरोवर-सरिच्छैलादिभिश्चाद्भुतम् ॥

यह श्रीवृन्दावन नाना वर्ण की मणि - कान्ति का घन-समुद्र है, शाखा, पत्र, मुकुल, पुष्प फलादिकयुक्त अद्भुत लता-वृक्षों से शोभित है, नाना रत्नमय पशु-पक्षी, शुक, मयूर, कोकिला व गुञ्जार करने वाले मधुकरों से तथा सरोवर नदी पर्वतादिक से अद्भुत हो रहा है ॥४९॥

[५०]

नानारत्नमयस्थलीभिरमितामोदाभिरत्यद्भुतं –
क्रीड़ाकुट्टिमकोमलाभिरमितं कुञ्जावलीमञ्जुभिः ।
नित्योत्सर्पि-परागपुञ्ज-मकरन्दौघैर्महासुन्दरं
सान्द्रानन्द महारसेन विवशीकुर्वत् सहेशं जगत् ॥

अपरिसीम आनन्ददायक नाना रत्नमय स्थलों से, अत्यद्भुत क्रीड़ास्थलियों की कोमलता से, असीम कुञ्जों की मनोहरता से नित्य उड्डीयमान पराग से तथा रस-प्रवाह से महासुन्दर यह श्रीवृन्दावन-सान्द्रानन्द महारस द्वारा ईश्वर सहित समस्त जगत् को ही विवश कर रहा है ॥५०॥

[५१]

कालिन्द्याः कलहंससारस-लसत्कारण्डवाद्यैः खगै–
राश्चर्यैः परिघुष्टया द्विजकुलैर्मत्तालिझङ्कारया ।
कह्लारैः कमलैः सदा विकशितैर्दिव्यैर्विचित्रोत्पलै–
र्भ्राजन्त्या पुलिनश्रिया मणितटोद्दीप्तश्रिया चावृतम् ॥

यह श्रीवृन्दावन कालिन्दी पर कलहंस, सारस तथा मनोहर कारण्डवादि विहङ्गवृन्दों से एवं अन्यान्य आश्चर्यमय पक्षियों से कोलाहलित है, मत्त-भंवरों की गुञ्जार से मुखरित है, सदा प्रफुल्लित

कह्लार, कमल, दिव्य-दिव्य विचित्र उत्पलों से शोभित पुलिनों के सौन्दर्य और मणिवद्ध तटों से प्रकाशित हो रहा है ।।५१।।

[५२]

तस्याः प्रोज्ज्वलनिर्मलाद्भुत-रसानन्दैकसन्दोह वाः
पूरायास्तटरत्नभूमि-लसितोत्तुङ्गा कदम्बाटवी ।
तत्संसर्गि-सुगन्धिमन्दशिशिरैर्मन्दानिलैर्लोलिता
तत्राभाति निकुञ्जपुञ्जमुदयत्कन्दर्पपुञ्जं सदा ॥

प्रोज्ज्वल निर्मल अद्भुत रसानन्दराशिरूप जल से पूरित कालिन्दी के तट की रत्नभूमि पर उच्च कदम्ब-वन शोभित हो रहा है, यमुना के संस्पर्श से सुगन्धित, शीतल तथा मृदुल वायु से वह कदम्ब-वन स्निग्ध हो रहा है, उस स्थान पर नित्य कामराशि से उद्दीपक निकुञ्ज-पुञ्ज दिखाई दे रहे हैं ।।५२।।

[५३]

तत्रानङ्गरसोन्मदैकसहजावाश्चर्यकैशोरका-
वाश्चर्योज्ज्वलगौरनीलमधुराकारौ महामोहनौ ।
वेणीदण्ड-शिखण्डमण्डित-महाचूड़ामणी हारिणौ
राधा-माधव-नाम-नागरवरौ लावण्यमूर्त्ति स्मर॥

उसी स्थान पर सहज अनङ्गरसोन्मत्त, आश्चर्य-कैशोर अवस्थायुक्त, आश्चर्यमय गौरनीलाकृति, महामोहन वेणीदण्ड तथा मयूरपुच्छ शोभित महा-चूड़ामणिधारी मनोहर राधामाधव-नामक लावण्य-मूर्त्ति नागर-श्रेष्ठ श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर ।।५३।।

[५४]

पूर्णास्वाद्यविशुद्धभाव-वपुषो रङ्गेषु या माधुरी-
धारा येऽद्भुतभङ्गिमान उरुधा यः कान्तिपूरोदयः ।

या नेत्राञ्चलचातुरी स्मितपरिपाटी च या वा मिथो
या गोष्ठी च रहः सुनर्ममधुरा भावेऽखिलं भावय ॥

पूर्ण आस्वाद्य विशुद्ध भावयुक्त विग्रह श्रीयुगलकिशोर के अङ्ग अङ्ग से जो माधुर्यधारा प्रवाहित होरही है, जो अद्भुत भङ्गिमा से अनेक प्रकार की अपार कान्ति हो रही है। नेत्र चञ्चल-चातुरी, मृदु-मधुर-हास्य-परिपाटी एवं परस्पर उनका जो नर्म मधुर निर्जन संलाप है, उस समस्त की चित्तमें चिन्ता कर ॥५४॥

[५५]

दासीमण्डल इन्दुकोटिवदने श्रीराधिकायाः पदा-
म्भोज-भ्राजदपार-मादकरसज्योतिर्घनैकाकृतौ ।
आश्चर्याकृति वर्णभेदमधुरेऽत्याश्चर्य-नाना-कला-
निर्म्मातर्यतिनूत्नयौवनवयोनानाविचित्र-क्रमे ॥

श्रीराधाजी के चरणकमलों की असीम मादक महाज्ज्योति की घनाकृति विशिष्ट, कोटि चन्द्रबदनी, आश्चर्य आकृति तथा बहुविधि वर्णों से सुन्दरतापूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यमय नाना कलायुक्त, अति नवीन यौवनपूर्ण तथा नानविधि विचित्र शक्ति धारण करने वाली राधादासी-मण्डली शोभित हो रही है॥

[५६]

मूर्त्तिं काञ्चन काञ्चनद्रवरुचिं सौम्यां महासुन्दरीं
प्रत्यङ्गोच्छलदन्तपार-रहितस्निग्धाच्छ-गौरच्छटाम् ।
कैशोरेण मनोहरामुरसिजस्वर्णाब्जकोशद्वयीं
सम्वीताम्वर कञ्चुकेन विलसद्धारावलींविभ्रतीम् ॥

उस मण्डली में कोई एक गलित-स्वर्णवत् वर्णशीला है, जो सम्यौ की महा सुन्दर मूर्त्ति है, उसके प्रति अङ्ग में अनन्त असीम स्निग्ध निर्मल गौरकान्ति प्रस्फुरित हो रही है, वह मनोहर कैशोर

मूर्त्ति है, युगलस्तनरूप स्वर्णपद्मों को धारण करने वाली है, सुन्दर वस्त्र, कञ्चुकी तथा विचित्र हारावली को धारण कर रही हैं ॥५६॥

[५७]

मध्ये केशरिवत् कृशां पृथुकटिं चित्रोर्म्मिमच्छाटिकां
दोर्वल्लीविलसन्महाद्भुत-मणी-केयूरचूड़ावलिम् ।
कर्णोध्वाद्भुतकर्णपूरविलसत्ताटङ्क-दिव्यच्छटां
श्रीनासातिलपुष्प-रत्नकनकावद्धस्फुरन्मौक्तिकाम् ॥

उसका मध्यदेश सिंह की भाँति अति कृश है, कटि पृथुल में विचित्र तरङ्गयुक्त साढ़ी पहिर रही है, बाहु-लताओं में महा अद्भुत मणि, केयूर तथा चूड़ा आदि धारण कर रही है, कानों के ऊपर अद्भुत कर्णपूर तथा उनके नीचे बालियोंकी दिव्य छवि है, श्रीनासा तिलपुष्पवत् है तथा उसमें रत्न तथा स्वर्ण-जड़ित मुक्ता शोभायमान है ॥५७॥

[५८]

दीव्यद्दाड़िमबीजपंक्तिदशनां माधुर्यवन्याबुड़द्-
बिम्बोष्ठीं मदखञ्जरीटनयनां कन्दर्पचापभ्रुवम् ।
भ्राजत्काञ्चन-पद्मकोशवदनानन्तेन्दुकोटिच्छबि
भङ्गीकोटिमहामनोहर-नवस्वकर्णवल्लीतनुम् ॥

उसकी दन्तपंक्ति चमकीले दाड़िम के दानों की भांति है, विम्बवत् ओष्ठों से माधुर्य की वन्या प्रवाहित हो रही है, दोनों नेत्र मतवाले खञ्जनों की भांति हैं, भृकुटि कन्दर्प के धनुष समान है, प्रकाश्यमान स्वर्णकमल की भांति वदन-मण्डल से अनन्त चन्द्रकान्तिवत् कोटि कोटि छवि उद्भासित हो रही है, तथा कोटि भङ्गी द्वारा महा मनोहर नवीन स्वर्णलतावत् देह को धारण कर रही है ॥५८॥

[५९]

कूजन्नूपुरकिङ्किणीगणझनत्कारैर्महामञ्जुलां
प्रेयःकर्म्मसुसम्भ्रमेण प्रणयाद्यान्तीं मदेतस्ततः ।
आलोलाञ्चलगुच्छनील-सुतनून्मीलन्निचोलावृतां
व्रीड़ा-भङ्गिम-मन्दहासकुटिलेक्षादि-स्वभावाद्भुताम् ॥

शब्दायमान नूपुर तथा किङ्किणी के झङ्कारसे वह महा मनोज्ञा हो रही है, प्रियतम युगलकिशोर के कार्य गौरव से प्रणयवश नित्य सञ्चारिणी है । आन्दोलित अञ्चल के गुच्छों से नीलाभ सुन्दर देह उसका सुन्दर निचोलिनी द्वारा आवृत हो रहा है, लज्जा, भङ्गिमा, मन्दहास्य तथा कटाक्ष करने का उसका अद्भुत स्वभाव है ॥५९॥

[६०]

प्रोद्यत्पुलकावलिं मुहुरतिस्नेहान्निजप्रेष्ठयो-
स्तत्तद्गूढ़तदिङ्गितानुसरणैः सन्तोष-वन्याकरीम् ।
राधा-पक्षपरिग्रहेण दधतीं नर्म्मक्रिया-दक्षतां
श्रीश्वर्याश्चरणैकसङ्गततया नित्यस्थितां तत्पराम् ॥

अपने प्रियतम युगल के अति अनुराग में बार बार पुलकित हो रही है, दोनों के निगूढ़ इङ्गितों को जान कर दोनों के लिए सन्तोष-वन्या प्लावित करने वाली है, श्रीराधा की पक्षपातिनी होने से परिहासादि क्रियाओं में विशेष निपुणा है, श्रीप्राणेश्वरी की चरण-सेवा में नियुक्त होने से नित्य तत्परा होकर अवस्थित है ॥६०

[६१]

मन्त्रादौ मृदुशीतलामृतगिरा संपृच्छ्यमानां क्वचित्
सर्वालीः परिवञ्च्य केलिघटनायादिश्यमानां क्वचित् ।
उक्त्वा किञ्चन कर्हिचित् प्रियमनु प्रेम्णैव संप्रेषिता-
मानन्दाम्बुनिधावगाधमधुरे निमज्ज्य रोमाञ्चिताम् ॥

कभी वह मन्त्रादिरूप मधुर शीतल वाक्यामृत द्वारा कुछ पूछती है, कभी समस्त सखियों की वञ्चना करके उसको ही केलि-विलासादि रचाने का आदेश होता है। कभी गुप्त मन्त्र बताकर प्रेम पूर्वक उसे कहीं भेजा जाता है, कभी अगाध मधुर आनन्द में निमग्न होकर वह पुलकित होती है ॥६१॥

[६२]

काप्युद्वर्तनकारिणीं क्वचन सद्गन्धोदकैः स्नापनीं
वस्त्रालङ्कृति-गन्ध-माल्य-विभवैः संराधयन्तीं क्वचित् ।
संभोज्य क्वचनामृतं प्रविलसत्ताम्बूलकर्पूरदां
काप्यङ्घ्रि द्वयलालनीं मृदुपटैः सम्वीजनैः स्वापिनीम् ॥

कभी वह (श्रीयुगलकिशोर का) उबटन करती है, और कभी उन्हें सुगंधित जल से स्नान कराती है, कभी तो वसन-भूषण, सुगंध-माल्यादि से सम्यक् आराधना करती है, और कभी मृदुल-पट से निर्मित बीजना करके नींद लाने का साधन करती है ॥६२॥

[६३]

क्वापि श्यामलसंगखेलनमहारङ्गं समातन्वतीं
भृङ्गार-व्यजनादिभिर्विजयिनीं कुत्राप्यनुपस्थिताम् ।
उक्ते किञ्चिदनुक्त एव किमपि प्रेम्णानिशं कुर्वतीं
राधायाः प्रियमेव पूर्णपरमानन्दे वुडन्तीं मुहुः ॥

कभी तो वह श्रीश्यामसुन्दर के साथ लीला के लिए महा-रङ्ग विस्तार करती है, भृङ्गार, व्यञ्जनादि हाथ में लेकर कभी पीछे पीछे गमन करती है, कुछ कहने पर अथवा कुछ न कहने पर भी निरन्तर प्रेमपूर्वक श्रीराधाजी की कोई न कोई सेवा करके पूर्ण-परमानन्द में निमग्न रहती हैं ॥६३॥

[६४]

श्रावं श्रावमतिस्मराकुलहृदोस्तास्ता रहःसम्विद-
स्ताताः सुन्दरदृष्टिगात्रविकृतीस्तास्ता विचित्रास्तयोः
वैदग्धीर्नवसङ्गमेषु मधुरास्तास्ता विचित्रच्छवी-
र्वीक्ष्यानन्दमहारसोच्छलनतो नाङ्गानि धर्तुं क्षमाम् ॥

अति कामातुर चित्त युगलकिशोर के निर्जन संलापों को सुन-सुन कर, एवं उनके सुन्दर नयन व गात्र विकृति आदि, तथा विचित्र वैदग्धी तथा नव सङ्गम की मधुर कान्ति राशि दर्शन करते करते वह महारस की तरङ्गों में अपने को नहीं सम्भाल सकती ॥६४

[६५]

एवं नित्यमनुस्मरन्ननुस्मरन् राधापदाम्भोरुह -
च्छायामेव तयोः सदैव रसनां नामामृतैः पूरयन् ।
स्त्री-तत्सङ्गिविदूर एव विचरन्नत्युत्कटत्वं नयन्
वैराग्यं क्रमशो वसत्यतिकृती कोऽप्यत्र वृन्दावने ॥ (इति कुलकम्)

इस प्रकार श्रीराधाजी के चरणकमलों की कांतिका नित्य अनुस्मरण करते करते युगलनामामृत में नित्य ही रसना को पूर्ण करते करते, स्त्री तथा उसके संगियों से बहुत दूर रह कर क्रमशः अति तीव्र वैरागाश्रय करके कोई एक अतिशय भाग्यवान् पुरुष ही श्रीवृन्दावन में वास करता है ॥६५॥

[६६]

दिने दिनेऽतिवर्द्धिष्णु-महाभक्ति-विरक्तिमान् ।
कोऽपि वृन्दावने धन्यो भाति राधापदाश्रितः ॥

प्रतिदिन अत्यन्त वर्द्धनशील महाभक्ति व वैराग्ययुक्त कोई एक भाग्यवान् पुरुष ही श्रीराधा-पदाश्रित होकर श्रीवृन्द वन में वास करता है ॥६६॥

[६७]

राधाकृष्ण-सुतत्वबोध-विगत-व्यर्थोरुशास्त्रश्रमः
श्रीराधा-चरणारविन्द-सहज-स्वात्मैक्यभावोज्ज्वलः ।
वैराग्येण वलीयसा न हि मनागूदेहस्थितावप्यहो
जातेहःसकलप्रियो निवसति श्रीधाम्नि वृन्दावने ॥

श्रीराधाकृष्ण के सुतत्त्व को जान लेने पर अनेक शास्त्राभ्यास जनित सब व्यर्थ श्रम दूर होजाता है। श्रीराधा-चरणकमल में अपने प्राणवत् सहज एकान्त समुज्ज्वल भाव से, हाय! तीव्र वैराग्य पूर्वक, देह की रक्षा के लिए भी बिन्दुमात्र चेष्टा न कर के, सकल-प्रिय कोई भाग्यवान् पुरुष श्रीधामवृन्दावन में वास करता है॥६७॥

[६८]

आयातं न कुतश्चन क्वचन नो गन्तृ स्मरैकाम्बुधौ
पारावार विवर्जितेऽतिविषमेऽनाद्यन्तकालं लुठत् ।
गौरश्यामलदिव्यकान्ति सहजात्याश्चर्य-कैशोरकम्
यत्रास्ते मिथुनम् मिथोऽङ्गमिलनाज्जीवन्नु मस्तद्वनम् ॥

न कहीं से आते हैं एवं न कहीं जाते हैं, अनादि अनन्त काल से पारावारहीन अति विषम कामरस सागर में जो मज्जन कर रहे हैं, वे सहज अतिशय आश्चर्यमय युगलकिशोर श्रीगौरश्याम दिव्य-कान्तिधारी मिलित-विग्रह से जहाँ प्राण-स्वरूप हो कर विराजमान हैं, उस श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता हूँ॥६८॥

[६९]

पूर्णस्वाद्यविशुद्धभावमय-चिन्मूर्त्ति महामोहनौ
कैशोराद्भुत-रूपकान्तिगतिदृग्वागङ्गभङ्ग्यादिभिः ।
कामोन्माद-महाविकार परमाश्चर्याकृती निःसमो-
र्ध्वाभिः सुन्दरताभिराश्रयवरौ वृन्दावने दम्पती ॥

किशोर अवस्था के अद्भुत रूप, कान्ति, गति, दृष्टि, वाक्य तथा अङ्ग भङ्गिमा आदि की असमोर्द्ध सुन्दरताराशि के द्वारा पूर्ण आस्वादनीय, विशुद्ध भावमय, चिन्मूर्त्ति महामोहन, कामोन्मद महा विकारयुक्त परमाश्चर्य आकृति वाले परम श्रेष्ठ श्रीयुगलकिशोर की श्रीवृन्दावन में शरण ग्रहण कर ॥६६॥

[७०]

सौन्दर्यौघ-महाचमत्कृतिरहो माधुर्यसीमा परा
लावण्यामृतचन्द्रिका जलनिधेः कोऽप्यद्भुतः संप्लवः ।
अत्याश्चर्य-महानुरागविभवः कन्दर्पलीलावधि –
र्वृन्दारण्य उदेति नूतनवयाः प्राणौ मम द्व्यात्मकः ॥

अहो ! सौन्दर्यराशि का महाचमत्कार, माधुर्य की शेष सीमा लावण्यामृत चन्द्रिका के सागर की कोई एक अद्भुत बन्या, अति आश्चर्य महानुराग-सम्पत्ति, कन्दर्प–लीला की पराकाष्ठा, नवीन-कैशोरयुक्त मेरे दो देही एक प्राण स्वरूप (श्रीराधाकृष्ण) श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं ॥७०॥

[७१]

श्रीवृन्दावनमेकभाव-सदखण्डैकानुरागोन्मदं
कन्दर्पैककलाचमत्कृति-महानन्दोर्मि-दोलायितम् ।
विश्रान्तिस्थलमेकमद्भुतवयोरूपच्छबीनामहं
गौरश्यामसुपास एकहृदय-प्राणं किशोरद्वयम् ॥

श्रीवृन्दावन, ऐक्य भावमय अखण्ड-अनुराग से उन्मत्त होरहा है, एकमात्र कन्दर्प-कला-चमत्कार राशि की महानन्द तरङ्गों द्वारा आन्दोलित हो रहा है, अद्भुत वयस, रूप तथा छबि का एकमात्र विश्रान्ति-स्थल है, एक हृदय-प्राण गौरश्याम युगलकिशोर की मैं उपासना करता हूँ ॥७१॥

[७२]

परस्पर-कथा-सुधारस-निमग्न-कर्णास्तयोः
परस्पर-विलोकनाद्यु दित रूपलीलेक्षणाः ।
परस्पर-समागमोत्सव रसातिमत्तान्तराः
स्मरामि हरिराधयोर्नवनिकुञ्जखेलाः सखीः ॥

दोनों के परस्पर कथा सुधारस में जिन के कान निमग्न हो रहे हैं ; विलोकनादि से जिनके रूप, लीला तथा नेत्रादि की विशेषता परिलक्षित होती है, परस्पर समागमोत्सव-रस में जिनका मन अतिशय उन्मत्त हो रहा है। श्रीहरि—राधा की नवीन निकुञ्ज-लीला-परायणा उन सखीगणों को मैं स्मरण करता हूँ ॥७२॥

[७३]

यद्यद्धाष्ट्र्य विजृम्भितं स्मर-रसात्युन्मादिनः श्रीहरेः
प्रत्याख्यानविलज्जितैर्विलसितं यद्यद्विशाखात्मनः ।
वैदग्धीमधुरं तयोर्विलसितं यद्यत्रैव सङ्गमे
तद्वृन्दावनमावसन् हृदि महाभावेऽनिशं भावये ॥

कामरस में अतिशय उन्मत्त श्रीहरि की जो समस्त धृष्टचेष्टाएं हैं, प्रत्याख्यान द्वारा विशेष लज्जा-प्राप्त उस भिक्षुक-स्वभाव श्रीहरि के जो विलासादि हैं, नव सङ्गम में दोनों का जो जो वैदग्धी पूर्ण मधुर केलि-प्रसङ्ग है, उन समस्त का श्रीवृन्दावन में वास कर के ही महाभावयुक्त हृदय में मैं निरन्तर चिन्तन कर सकूंगा ॥७३॥

[७४]

ब्रह्माख्यं धाम विष्णोर्वहति हृदि सदा यः स पूज्योऽत्र लोके
मूर्त्तिं यां काञ्चिदेवार्चयति भगवतो यः स तस्य प्रियात्मा ।
साक्षाच्छ्रीकृष्णचन्द्रं भजति य उरुभिः सोऽनुभावैरतुल्यो
मच्चेतस्त्वेष जह्रे त्यजति रसिकराड् नैव वृन्दावनं यः ॥

जो श्रीनारायण की ब्रह्माख्य-प्रकाश-मूर्त्ति को हृदय में धारण करते हैं, वे इस जगत् में पूज्य हैं ; जो किसी भगवन्मूर्त्ति की अर्चना करते हैं, वे भगवान् के प्रियात्मा है, जो श्रीकृष्णचन्द्र का अनेक अनुभावों से भजन करते हैं, उनके समान कोई नहीं है ; मेरा चित्त तो किन्तु उन्होंने चुरा लिया है जो रसिकराज श्रीवृन्दावन को कभी त्याग नहीं करते ॥७४॥

[७५]

भूर्भूरेवात्र येषां जलमपि च जलं शाखिवल्ल्यो द्रुवल्ल्यो
ज्योत्स्नादि ज्योतिराद्यं खगपशुमनुजादीनि पक्ष्यादिकानि ।
श्रीकृष्णःकृष्ण एवाखिलदनुजरिपु राधिका राधिकैव
व्यूह्यालं तेन वृन्दावनमनु मम काऽप्यस्तु दिव्यानुभूतिः ॥

श्रीवृन्दावन की भूमि को जो साधारण भूमि जानता है, यहाँ के जल को साधारण जल, वृक्ष-लताओं को सामान्य वृक्ष-लता, ज्योत्स्नादि को साधारण ज्योति, विहङ्ग-पक्षी तथा यहाँ के मनुष्यों को जो साधारण विहङ्गादि तथा साधारण मनुष्य जानता है, श्रीकृष्ण समस्त दैत्यों को मारने वाले हैं इतनामात्र ही जो श्रीकृष्ण को जानता है तथा श्रीराधिकाजी को साधारण आराधिका मात्र ही जो जानता है, उसके साथ तर्क करना व्यर्थ है; किन्तु श्रीवृन्दावन में मेरी कुछ दिव्यानुभूति हो—यही प्रार्थना है ॥७५॥

[७६]

श्रीवृन्दावनतत्त्वमस्तु हृदि मे शश्वन्महामाधुरी –
पूरं पूर्णविशुद्धमन्मथरसैकोद्दीपकं मोहनम् ।
श्रीवृन्दावनचन्द्रतत्त्वमपि मे कन्दर्पलीलारसै –
कात्मस्फूर्तिमुपैतु साद्य विमला राधाऽपि पूर्णा रतिः ॥

मेरे हृदय में अविनश्वर महा माधुर्य-प्रवाही, पूर्ण विशुद्धरस

उद्दीपक एवं मनोहर श्रीवृन्दावन तत्त्व प्रतिभात हो, तथा एकमात्र कन्दर्पलीला-रस की स्फूर्ति करने वाला श्रीवृन्दावनचन्द्र-तत्त्व (श्रीकृष्ण-तत्त्व), परिपूर्ण रति-स्वरूपिणी विमला श्रीराधा आज मेरे मन में उदित हों ।।७६।।

[७७]

अनन्तैर्माधुर्य्यैर्भरित नव-कैशोरवयसौ
महागौरश्याम-प्रविलसदनन्तच्छविनिधी ।
अनन्तैर्वैदग्धैरविचलदनन्तस्मरकला –
सुकेलिभि वृन्दाविपिनमनुकौचिद्विहरतः ॥

अनन्त माधुर्यपूर्ण, नव कैशोरवयस्क, महागौरश्यामवर्ण, अनन्त कान्ति-राशि के प्रकाशक, अनन्त वैदग्धी तथा अविचल अनन्त अनङ्ग-कला-विलासादियुक्त अनुपम युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में विचरण कर रहे हैं ।।७७।।

[७८]

ययोः श्रीदम्पत्योः सहजनवकैशोरवयसौः
सुगौरश्यामाङ्गच्छविमधुरलीला-लहरिभिः ।
समस्तं श्रीवृन्दावनमतिरसोन्मत्तमभवत्
तयोरेवाश्वास्यं मम किमपि दास्यं रतिगृहे ॥

सहज नवकिशोर अवस्थायुक्त जिन सुगौर-श्यामाङ्ग युगलकिशोर की कान्ति की मधुर लीला तरङ्गों द्वारा समस्त श्रीवृन्दावन ही रसोन्मत्त हो रहा है, उनके ही रति-गृह में अनिर्वचनीय दास्य-रस ही मुझे आश्वासना देने वाला हो ।।७८।।

[७९]

वीभत्सं वपुरेतदत्र पतिताश्चेष्टाः समस्ता अपि
व्यालुप्य प्रकृतिं भंजन् रसमयीमन्तस्तथैवाकृतिम् ।

श्रीवृन्दाविपिनेऽत्यकिञ्चनतया यत्र क्व चावस्थितः
श्रीराधाचरणारविन्दमनिशं प्रेम्णा कदा राधये ॥

यह वीभत्स शरीर तथा इसकी जितनी चेष्टाएं हैं, वे समस्त विशेषभाव से त्याग कर, अन्तश्चिन्तित शरीर में रसमयी प्रकृति तथा आकृति की भजन-भावना करते हुए, श्रीवृन्दावन के जिस किसी स्थान पर अति अकिञ्चन भाव से रह कर कब मैं निरन्तर श्रीराधा-चरणकमलों की प्रेमपूर्वक आराधना करूंगा ॥७९॥

[८०]

माऽस्तु मम कदापि पापरूपिणो नरकोद्धारः किन्तु ।
श्रीवृन्दावन-राधातन्नागरनाम विस्मृतिं नैतु ॥

मुझ पापी का भले कभी भी नरक से उद्धार न हो, किन्तु श्रीवृन्दावन–नाम, श्रीराधा-नाम तथा श्रीराधानागर के नाम को कभी न भूलूं ॥८०॥

[८१]

मत्सम इह पापात्मा कोऽपि न भूतो न चास्ति नो भविता ।
तन्मे सहजनिरंकुश करुणं वृन्दावनं परं शरणम् ॥

मेरे समान पापात्मा इस जगत् में कोई न हुआ, न है, न होगा ; अतः स्वाभाविक असीम करुणामय श्रीवृन्दावन ही एकमात्र मेरी शरण (गति) है ॥८१॥

[८२]

श्रीवृन्दावन-परमेशाद्भुतकरुणा-क्षमादि-गुण-शक्तेः ।
स्वरसं प्राप्य निहीनोऽप्यनन्यगतिरेषोऽहं नोपेक्ष्यः ॥

श्रीवृन्दावनाधीश्वर की अद्भुत-करुणा है, क्षमादि गुणों की शक्ति का स्वकीय-रस पाकर मैं नीच होकर भी उनकी अनन्य शरण ग्रहण करके उनसे उपेक्षित नहीं हो सकता ॥८२॥

[८३]

वृन्दावन ! तव शरणं गतोहमिति-वागतीव दुष्टात्मा ।
हरि हरि तवानुकम्पा-विषय- स्यां नीचतोऽपि किमु नीचः ॥

हे श्रीवृन्दावन ! "मैं आपकी शरण हूँ"—यह वाक्य कहने वाला मैं अत्यन्त दुष्टात्मा हूँ ; हाय ! हाय !! नीच से सुनीच हो कर भी किन्तु मैं आपकी दया का पात्र ही रहूँगा ।।८३।।

[८४]

उषितं वृन्दारण्ये कतिदिनान्युदितं च नाम राधेति ।
केवलमेतन्मम बलमपारनरके स्वकर्मणा विशतः ॥

श्रीवृन्दावन में बहुत दिन वास किया है, "राधा" नाम भी उच्चारण कर लिया है, अब अपने कर्मवश असीम नरक में जाने पर केवल यही एकमात्र मेरा बल है ।।८४।।

[८५]

हे वृन्दाटवि मात-र्हा वृन्दाकाननाधीशौ ।
श्रीराधामुरलीधरौ किं स्वपराधैरुपेक्ष्य एवैषः ॥

हे माता श्रीवृन्दावन-भूमि ! हा वृन्दावनाधीश श्रीराधामुरली-धर ! किन अपराधों से मैं आप से उपेक्षित हो रहा हूँ ? ।।८५।।

[८६]

अहह विगर्हित-कर्म्मण आस्तां यत्तन्ममातिमूढ़स्य ।
नैव जहाति तु वृन्दाविपिनं नैवात्र नाम राधायाः ॥

आहा ! मैं दुष्टकर्मकारी अति मूर्ख हूँ, मेरी कुछ भी गति क्यों न हो, किन्तु मैं श्रीवृन्दावन को नहीं छोड़ंगा और न ही यहाँ श्रीराधा-नाम को छोड़ूगा ।।८६।।

[८७]

राधारूपविलासान् समधिक माधुरीधुरभरितान् ।
अपि वचसापि गृणन्नहमिह वृन्दाकाननेऽस्मि निश्चिन्तः ॥

अतिशय माधुर्यधारापूर्ण श्रीराधा रूप-विलासादि का गान करते हुए मैं इस श्रीवृन्दावन में निश्चिन्त हो गया हूँ ॥८७॥

[८८]

चम्पक-कुवलयकान्ती रूपवयःश्रीविलासविश्रान्ती ।
तौ दम्पती गती मे वृन्दाविपिने स्मरैकरसमूर्त्ती ॥

चम्पक और नीलोत्पल के समान कान्तियुक्त, रूप-वयस-सौन्दर्य तथा विलासादि की सीमा, कामैक-रसमूर्त्ति, श्रीवृन्दावन की वह जोड़ी ही मेरी गति है ॥८८॥

[८९]

वृन्दाकाननकुञ्जे मञ्जुलरतिकेलिमाधुरीपुञ्जे ।
गौरश्यामकिशोरौ मानसचरौ सदा मम स्फुरताम् ॥

मनोहर रति-विलासादि के माधुर्य से मण्डित श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में मेरे चित्तचोर गौरश्यामयुगलकिशोर सदा स्फुरित हों ॥८९॥

[९०]

वेद्मि न धर्माधर्मौ नेक्षे शास्त्राणि नापि तत्सुविदः ।
राधाकृष्ण पदाम्बुज मधुरिमलोभ-भ्रमन्मनो-मधुपः ॥

मैं धर्म अधर्म को नहीं जानता हूँ, शास्त्रों का दर्शन भी नहीं किया है, सुविधा भी कुछ प्राप्त नहीं है। अतः श्रीराधाकृष्ण के चरणकमल माधुर्य के लोभ में मेरा मन मधुकर भ्रमणकर रहा है ॥

[९१]

अत्युन्मदरससागरमग्नं तन्नागरद्वयं किमपि ।
विहरद्गौरश्यामं वृन्दावनकुञ्जवीथिकासु भजे ॥

अत्यन्त उन्मादरस सागर में निमग्न, श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में क्रीड़ा परायण, उन गौरश्यामात्मक युगल-नागर का मैं भजन करता हूँ ॥९१॥

[६२]

अप्यस्तु नरक कोटि-वृन्दावनतोऽपि मास्तु वा सफला ।
राधापदाब्जदास्ये सुदुस्त्यजाशा ममाधमस्यापि ॥

श्रीवृन्दावन में वास करते हुए कोटि नरक हों या नहीं हों, अधम होकर भी मेरी किन्तु श्रीराधा-चरणकमल की दासता को कभी न छोड़ने की आशा बनी रहे ॥६२॥

[६३]

यदि दुर्वाच्यसहस्रं यदि च त्रुकचेन दीर्यते देहः ।
दुष्कर्मकोट्यो यदि तदपि न राधाप्रियवनं जह्याम् ॥

यदि सहस्रों दुर्वचन सहन करने पड़ें, यदि कोई इस देह को द्रांत द्वारा विदीर्ण ही क्यों न कर दे, कोटि-कोटि दुष्कर्म भी यदि करने पड़ें तो भी श्रीराधाजी के प्रियवन श्रीवृन्दावन को मैं त्याग नहीं करूंगा ॥६३॥

[६४]

चण्डालैरपि थुत्कृत इह चेद्वृन्दावने लभे वसतिम् ।
आमृति यदि तत्कृपयैवाथ समस्तं तृणाय मन्येऽहम् ॥

श्रीवृन्दावन की कृपा से यहाँ यदि मृत्यु पर्यन्त वास पाऊं, तो चण्डालगणों से धिक्कारित होने पर भी मैं उसे तृण के समान जानूंगा ॥६४॥

[६५]

अतिदुर्गन्धात्यशुचिन्यतिविकृतेऽन्तादि-मध्य-दुखौघम् ।
योषिद्वपुषि निमग्नं वृन्दारण्यं विनोद्धरेन्न परम् ॥

मैं अति दुर्गन्धित, अति अपवित्र एवं अति विकृत स्त्री-शरीर में निगग्न हूँ ; आदि मध्य तथा अन्त में केवल दुख का ही भागी हूँ, मेरा श्रीवृन्दावन के बिना और कोई भी उद्धार नहीं कर सकता।

[६६]

अहह महाहतभाग्यो महाविपथबुद्धिपतितचाण्डालः ।

अहमपि कामप्याशां करोमि वृन्दावन-प्रभावज्ञः ॥

अहो ! महा अभागा, महा विपथ - बुद्धि तथा महा पतित-चण्डाल होकर भी हाय ! मैं श्रीवृन्दावन के प्रभाव को जान कर कोई (श्रीराधापद की दासता की) आशा करता हूँ ॥६६॥

[६७]

अत्युच्छृङ्खल करुणौ नवतरुणौ तौ सुगौरनीलरुची ।

स्ववने मां कलयेतां तुङ्गमहानङ्ग-खेलनौ क्वापि ॥

अत्यन्त असीम करुणानिधान, नवतरुण वे सुगौर-नील-कान्तिधारी महासुन्दर क्रीड़ापरायण श्रीयुगलकिशोर अपने श्रीवृन्दावन में कहीं मुझ पर कृपा दृष्टि करें ॥६७॥

[६८]

विहरत् प्राणद्वितयं वृन्दावन-पुष्पवाटिकायां तत् ।

गौरश्याममतिस्मर विवशकिशोरं कदा मुदा सेवे ॥

श्रीवृन्दावन की पुष्पवाटिका में विहार परायण वे अति काम-विवश चित्त वाले श्रीगौरश्याम-विग्रह प्राण-प्रतिम की आनन्द-पुर्वक मैं कब सेवा करूंगा ॥६८॥

[६९]

वृन्दावन नवकुञ्जद्वारि मनोहारि-सारि-खेलायाम् ।

मधुरविवादोज्जृम्भितरसजलधी पश्य राधिकाकृष्णौ ॥

श्रीवृन्दावन के नवीन कुञ्ज-द्वार पर मनोहर चौसर खेलते हुए मधुर विवाद से उदित रस-समुद्र में निमग्न श्रीराधिकाकृष्ण के दर्शन कर ॥६९॥

[१००]

श्रीवृषभानुव्रजपति दुर्लीलकुमारयोः स्मरातुरयोः ।
नवनवकुञ्जविहारा हारावलिवल्लुठन्तु मे कण्ठे ॥

श्रीवृषभानु तथा व्रजपति श्रीनन्द महाराज के दुर्लीला-परायण कामवशवर्त्ती दोनों कुमारों का नवीन-नवीन कुञ्जविहार मेरे कण्ठ में माला की भांति शोभित रहे ॥१००॥

[१०१]

दृष्टिं व्यावृत्य देहाद्यखिलगुणमय द्वैतजालादनन्तेऽ –
पारे ब्रह्मात्मचिज्ज्योतिषि गमय मनोऽथैश आनन्दसान्द्रे ।
ज्योतिष्यावेशयाथोमधुरतरमहाकामवीजे रसाब्धौ
तस्मिन् वृन्दावनं तद्घनमिह भज तौ नागरौ गौरनीलौ ॥

देहादि समस्त त्रिगुणमय जाल से दृष्टि को पलट कर अनन्त असीम ब्रह्मात्म-चिज्ज्योति में ले जा, फिर आनन्दघन ऐश-ज्योति में मन को लगा। उसके परे मधुरतर महाकाम-बीजात्मक रस-समुद्र-ज्योति में आविष्ट हो, वह रस-समुद्र ही घनीभूत होने पर श्रीवृन्दावन रूपमें प्रकाशित होता है, वहाँ गौरनील नागरयुगल का भजन कर ॥१०१॥

[१०२]

सौन्दर्येणासमोर्ध्वौ ललितनववयो माधुरीणां धुरीणां
विभ्राणौ दिव्यलीलामय-तनुमतनुक्षोभ संशोभमानाम् ।
स्वावस्थाभिः समुच्छृङ्खलघटित महाशक्तिवृन्दौ स्वयं तु
श्रीवृन्दारण्य नित्योन्मद मदन रसान्ध्येन नान्यद्विदन्तौ ॥

श्रीयुगलकिशोर—ललित नववयस एवं श्रेष्ठ-माधुर्य में अस-मोर्ध्व हैं, कामदेव को भी क्षुभित करने वाले परम मनोहर दिव्य-लीलामय शरीर को धारण करते हैं, वे अपनी अवस्था में (प्रकाश-भेद से) अति अपरिसीम महा शक्तियों को धारण करने वाले हैं,

स्वयं किन्तु श्रीवृन्दावन के नित्य उन्मत्त करने वाले काम-रस में मग्न होकर और कुछ भी नहीं जानते ॥१०२॥

[१०३]

वैदग्ध्याद्यैरतुल्याधिक-ललितसखीमण्डलं दिव्यरूपं
स्मृत्वा कैशोरनित्यं स्मर तदनु सदा किङ्करीस्ताः किशोरीः ।
नानाश्चर्याकृतीरद्भुतरुचिरकला वर्णभेदैर्मनोज्ञा
दिव्यालङ्कार-वस्त्रा निजदयिततमद्वन्द्वभावैकपूर्णाः ॥

वैदग्धी आदि से अधिक असीम-ललित दिव्य रूपमयी नित्य-किशोरी सखी-मण्डली को स्मरण करके फिर नित्यकिशोरी दासियों का स्मरण कर, वे नाना आश्चर्यमय आकृति धारण करने वाली हैं, अद्भुत मनोहर कला-वर्णादि के भेद से परम सुन्दरी हैं, दिव्य-अलङ्कार-वस्त्रादि से सुसज्जिता हैं, तथा अपने प्रियतम युगल-किशोर के भाव में ही एकमात्र परिपूर्णा हैं ॥१०३॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का नवम् शतक समाप्त हुआ ॥

———

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

दशमं शतकम्

[१]

काञ्चित्तत्राचलत् काञ्चनरुचिररुचिं कोटिचन्द्राननाभां
नीलोरुस्निग्धपुष्पग्रथितनवमहावेणिपुष्पोरुगुच्छाम् ।
श्रीमन्नासापुटप्रोज्ज्वलकनकमणिद्योति-द्विव्यैकमुक्तां
मुक्ता-पंक्तिच्छटौघच्छुरित-सुदशनां चारुबिम्बाधरौष्ठीम् ।

श्रीवृन्दावन में गलित-काञ्चन की भांति मनोहर कान्तियुक्त, कोटि चन्द्रों के समान सुन्दर मुखवाली एवं जिसकी सुन्दर-सुन्दर नीलपुष्पों द्वारा ग्रथित नवीन महावेणी के छोर पर अनेक गुच्छे लटक रहे हैं ; सुन्दर नासिका में उज्ज्वल कनकमणि-खचित-एक दिव्य मुक्ता डोलायमान है ; मुक्ताओं की कान्ति को भी मन्द कर देने वाली दन्तपंक्तियुक्त सुन्दर बिम्बोष्ठी कोई एक सखी विराजमान है ॥१॥

[२]

कैशोरव्यञ्जि-मञ्जुस्तनमुकुलयुगं गोपयन्तीं पटान्ते
नात्यन्तक्षीणमध्यामतिरुचिरमृदुश्रोणिराजद्दुकूलाम् ॥
काञ्चीमञ्जीरहारावलि-वलयघटा-दिव्यकेयूरशोभां
दिक्चक्राच्छादि-पूर्णच्छबि-कनकलता-चारुभङ्गीमयाङ्गीम् ॥

वह कैशोरव्यञ्जक मनोहर स्तनमुकलद्वय को अपने वस्त्राञ्चल से ढक रही है, उसका मध्यदेश अतिक्षीण है, उसके अति सुन्दर कोमल कटिदेश में सुन्दर वस्त्र शोभा दे रहा है, वह काञ्ची, नूपुर, हारावली, वलय तथा केयूरों आदिकों की शोभा से मण्डिता है, दशोंदिशाओं को आच्छादन करने वाली पूर्ण कान्तियुक्त स्वर्ण-लतावत् सुन्दर भङ्गीमय अङ्गोंयुक्त है ॥२॥

[३]

श्रीराधास्निग्धमुग्धेहित-पुलकवतीं स्वामिनीशिक्षितानां
सम्यग्वेत्रीं कलानां तदतिशयकृपा-स्नेहविश्वासपात्रीम् ।
कोटिप्राणात्मनिर्मञ्छित पदनखमण्येकशोभां स्वबन्धो–
र्विभ्राणां चारुगुच्छाञ्चलदलविलसच्चित्रसूक्ष्मं निचोलम् –

श्रीराधा की स्नेहमय मनोहर चेष्टा से ही वह पुलकित हो उठती है, स्वामिनी से सिखाई हुई समस्त कला विद्या जानती है, श्रीराधाकृष्ण की अत्यन्त कृपा, स्नेह और विश्वास का पात्र है, उसकी एकमात्र पदनखमणि की शोभा पर मेरे कोटि-कोटि प्राणो-पहार न्यौछावर किए जा सकते हैं, वह प्रियतम युगलकिशोर के सुन्दर विचित्र सूक्ष्म वस्त्र धारण कर रही है, एवं इन वस्त्रों के अञ्चलों में अनेक प्रकार के पत्रादि के स्तवक-शोभित विचित्रभाव धारण कर रही है ॥३॥

[४]

स्मरामि वृन्दावनकुञ्जवीथिकाः स्मरामि तौ नागर दिव्यदम्पती ॥
सुगौरनीलौ स्मरकेलिसागरे मग्नावपारे दिनरात्र्यवेदिनौ ॥

मैं श्रीवृन्दावन के कुञ्जों को स्मरण करता हूँ, उस नागर-दिव्य दम्पति को भी स्मरण करता हूँ जो सुगौर-नील-वर्णयुक्त हैं एवं असीम काम विलास–सागर में निमग्न होकर दिन-रात कुछ भी नहीं जानते हैं ॥४॥

[५]

नित्योन्मदानङ्गरसैकमूर्त्ति नित्यैककैशोरविलासपूर्त्ती ।
तौ दम्पती नित्यविचित्रकान्ती सुगौरनीलौ भज कुञ्जसीम्नि ॥

नित्य उन्मादि-आनन्दरस-मूर्त्ति-स्वरूप तथा नित्य कैशोर-विलासमूर्त्ति स्वरूप, नित्य विचित्र कान्तिधारी सुगौर-नील युगल-जोड़ी का कुञ्जों में भजन कर ॥५॥

[६]

परस्परप्रेमरसातिकाष्ठाघनाकृतीमोहनदिव्यरूपौ ।
प्रीत्यात्मवृन्दाविपिने रसान्धसखीसमेतौ सततं स्मरामि ॥

एक दूसरे के प्रेमरस की परमकाष्ठा द्वारा दिव्य मोहनरूप घनाकृती धारण करने वाले, रसान्ध-सखीवृन्दों से वेष्ठित, श्रीयुगल-किशोर को सर्वदा प्रेमस्वभावमय श्रीवृन्दावन में स्मरण कर ॥६॥

[७]

राधावल्लभमात्मकोटिदयितं नित्यार्त्तिरूपोन्नतिं ।
नित्यप्रोच्छलदन्तपाररहित श्यामाङ्ग कान्त्यम्बुधिम् ॥
नित्यानन्द रसोन्मदैक-विकृतिं नित्यैककैशोरकं
श्रीवृन्दावननित्यकेतनमहं नित्यात्मभावैर्भजे ॥

कोटि प्राण-प्रिय (नित्य मिलन में भी) नित्य विरह-विकार-शील, असीम अपार श्यामाङ्ग-कान्तिसागर के नित्य-वर्धनकारी, केवल अनङ्ग रसोन्माद में ही नित्य-विकारग्रस्त, नित्य-किशोर नित्य श्रीवृन्दावन-निवासी श्रीराधावल्लभ का मैं नित्य आत्म-भाव (स्वस्वरूप) से भजन करता हूँ ॥७॥

[८]

राधायास्तद्वयरतन्नवमदनकलातन्नवाङ्गाङ्गराजद् –
रूपश्रीह्रीविलासस्मिततति कुटिलापाङ्गलीलाङ्गभङ्गैः ।

प्रेमानन्दैकमूर्च्छाप्रदददतिमहागौरसुस्निग्धरोचिः -
पुञ्जैर्माधुर्यसारैर्हृदयमिह ममाहारि वृन्दावनान्तः ॥

श्रीराधाजी की उस वयस ने, उन नवीन मद-कलाओं ने, कुटिल-कटाक्षों ने एवं लीलामय अङ्गभङ्गिसादि के सहित उस नव-नव अङ्ग-शोभा ने तथा श्री,लज्जा, विलास, हास्यादि, प्रेमानन्द की मूर्च्छा प्रदानकारी अति महागौरवर्ण सुस्निग्ध कान्ति-राशि ने और माधुर्य-सारमय श्रीवृन्दावन की वस्तुओं ने मेरे हृदय को चुरा लिया है ॥८॥

[९]

अङ्गेऽङ्गे रूपलीला-मधुरिम-सुषमाऽपारसिन्धौ सुगौरे
श्रीकृष्णात्मैकचौरे ललित-नववयोविभ्रमे राधिकायाः ।
वृन्दारण्यानुभावात् कथमपि न मनाक् कुण्ठितादेकभावा-
विष्टं चेतः प्रविष्टं भवतु मम कदा माद्यदुच्चै रसेन ॥

श्रीवृन्दावन के अनुभाव (रत्यादि-सूचक गुण-क्रियादि) से किसी भी प्रकार बिन्दुमात्र विचलित न होकर एकभावाविष्ट मेरा चित्त उज्ज्वल रस में मत्त होकर, रूपलीला-माधुर्य तथा सुषमादि के सुन्दर गौरवर्ण - विशिष्ट असीम - सिन्धु, तथा श्रीकृष्ण की आत्मैक-चोर, ललित-नववयस के (शृङ्गारज-हाव-भाव) विभ्रमयुक्त श्रीराधाजी के प्रति अङ्ग में कब निमग्न होगा ? ॥९॥

[१०]

मद्गुणदोषविचारं विनैव वृन्दावनं महाशक्ति ।
नित्योच्छृङ्खलकरुणाद्यखिलगुणं मां ध्रुवं नयेत् स्वपदम् ॥

मेरे गुण-दोषों का विचार न करके महा शक्तिमय एवं नित्य असीम करुणादि अखिल-गुणशील श्रीवृन्दावन मुझे निश्चय ही अपने चरणों में स्थान देगा ॥१०॥

[११]

सर्वं त्यक्त्वा शरणमगमं श्रीलवृन्दावन ! त्वां
त्वय्यत्यन्ताक्षममकरवं कोटिसंख्यापराधम् ।
तन्मे नालम्बनमिह किमप्यस्ति राधापदाब्ज –
द्वन्द्वानन्दोन्मद-मदवनं त्वं न चेन्नैव नैव ॥

हे श्रीवृन्दावन ! सब कुछ त्याग कर मैंने आपकी शरण ली है, और आपके आगे क्षमा न किए जाने वाले कोटि-कोटि अपराध भी किए हैं। यहां मेरा और कोई आश्रय नहीं है, यदि राधापदारविन्द के आनन्द में उन्मत्त होकर आप मेरी रक्षा न करें, तो और मेरी कोई गति नहीं है, उपाय नहीं है ॥११॥

[१२]

श्रीवृन्दावनवर्त्तिनि यत्र क्वचनापि सापराधस्य ।
राधाकृष्णद्रोहिण उरुतरनरकात् कदापि नोद्धारः ॥

श्रीवृन्दावन का जहाँ भी कोई अपराध करता है, वह श्रीराधाकृष्ण का ही द्रोही है। उसका बहुत काल तक पीछे भी नरक से उद्धार नहीं होता ॥१२॥

[१३]

हा वृन्दावन ! राधा-तत्प्रिय-सर्वस्व ! उच्चकैरघवान् ।
त्वय्यहमतिभयकम्पित आसं त्वं मेऽत्र संभवच्छरणम् ॥

हा श्रीवृन्दावन ! श्रीराधाजी तथा उनके प्रिय श्यामसुन्दर तथा आप, सब के प्रति मैंने अनेक पाप किए हैं जिससे अब मैं भय से कम्पित हो रहा हूँ। अब मैं एकमात्र आपकी ही शरण हूँ॥

[१४]

राधाकृष्णविलासैरतिमधुरिमसिन्धुबन्धुरोल्लासैः ।
रञ्जितनिकुञ्जवीथीं ध्यायति वृन्दाटवीं महाधन्यः ॥

श्रीराधाकृष्ण के विलास से महा माधुर्य-सिन्धु की मनोहर तरङ्गों में श्रीवृन्दावन का निकुञ्ज-पथ रञ्जित हो रहा है, इस प्रकार कोई महा भाग्यवान् पुरुष ही श्रीवृन्दावन का ध्यान करता है ॥१४॥

[१५]

पतितमनाथं मूढं दीनं दुश्चेष्टितैकरतं माम् ।
राधाङ्घ्रिकमलदूरं न वेद्मि वृन्दावनं कथं कुरुते ॥

पतित, अनाथ, मूढ़, दीन तथा एकमात्र दुष्चेष्टाओं में संलग्न मुझको क्यों यह श्रीवृन्दावन श्रीराधाचरण से दूर रख रहा है, मैं यह नहीं जानता ॥१५॥

[१६]

अत्यन्तकुमतिमत्युच्छृङ्खलमतिशोच्यशोच्यं माम् ।
श्रीवृन्दावनमेव स्वाद्भुतकृपयाऽऽत्मसात् कुरुताम् ॥

अत्यन्त कुमति, अति उच्छृङ्खल तथा अति शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुए मुझ को श्रीवृन्दावन ही अपनी अद्भुत कृपासे अपना लें ॥१६॥

[१७]

श्रीवृन्दावननागरकिशोरमिथुनं सुगौरनीलं तत् ।
स्वकामैकरसमग्नं मम हृदि लग्नं महाद्भुतं किमपि ॥

वे महाद्भुत कामैकरसमग्न सुगौर-नीलवर्ण श्रीवृन्दावन-नागर युगलकिशोर मेरे हृदय से लगे रहें ॥१७॥

[१८]

कन्दर्पकेलिलोलं निरवधि वृन्दाटवीनिकुञ्जेषु ।
कनकेन्द्रनीलरोचिः किशोरयुगलं कदोन्मदः कलये ॥

श्रीवृन्दावन के निकुञ्जों में काम-विलास में नित्य चञ्चल, स्वर्ण-

इन्द्रनील-मणिवत् कान्तियुक्त श्रीयुगलकिशोर का उन्मत्त होकर कब मैं दर्शन करूंगा ? ।।१८।।

[१६]

वृन्दावने प्रजल्पन् गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् श्वसन्वापि ।
स्मर-तरल-गौरनीलज्योतिर्द्वन्द्वं कदा पुरः कलये ॥

बोलते, चलते-फिरते, बैठते-सोते अथवा प्रति श्वास-श्वास में काम-चञ्चल गौरनील-विग्रह श्रीयुगलकिशोर को कब मैं अपने सन्मुख देखूंगा ? ।।१६।।

[२०]

रसमयकिशोरमिथुनं रतिमन्मथकोटिमोहनं किमपि ।
गौरश्यामलमत्तं स्मरतां पदयोर्जगन्ति निपतन्ति ॥

कोटि रति-कामदेवों को मोहनकारी, मत्त-रसिक युगलकिशोर को जो स्मरण करते हैं, उनके चरणों में चौदह भुवन लुण्ठन करते हैं ।। २० ।।

[२१]

मोहनवृन्दावनभुवि मोहन-राधा-व्रजेन्द्रसुतयोस्ताः ।
मोहनमोहनरूपच्छविलीला मे सदा स्फुरन्त्वन्तः ॥

मोहन श्रीवृन्दावनभूमि में मोहन श्रीव्रजेन्द्रनन्दन के तथा वृषभानुदुलारी के मोहन से अति सुमोहन रूप, कान्ति, लीला आदि सर्वदा ही मेरे मन में स्फुरित हों ।।२१।।

[२२]

आश्चर्यं नववयः श्रीरूपविलासं निकुञ्जवीथिषु ।
गौरश्यामलधाम-द्वयमतिमधुरं मम स्फुरतु ॥

निकुञ्जविहारीके आश्चर्य नवीन वयसयुक्त,शोभा,रूप-विलासादि मण्डित अति मधुर गौरश्याम युगलकिशोर मेरे हृदय में स्फुरित हों।।

[२३]

श्रीराधामाधव-श्रीवदनकमलयोः कोटिचन्द्रातिकान्त्योः ।
संफुल्लस्वर्णकोश स्फुटित-मरकताम्भोजसौभाग्यभाजोः ॥
पायं पायं सुशीता मधुरतर-वहद्धासपीयूषवाणी-
र्माद्यद्वृन्दावनेऽहं निरवधि ललिताद्यालिवृन्दं भजामि ॥

कोटिक चन्द्रप्रभा का तिरस्कार करने वाले प्रफुल्लित स्वर्ण-कोष में प्रस्फुटित नीलकमल की शोभा-सौभाग्य को धारण करने वाले श्रीराधामाधव के वदन-कमल से निकले हुए सुशीतल तथा मधुरतर प्रभावयुक्त अमृत-वाक्यों का पान कर करके जो ललिता-दिक सखीगण मत्त हो रही हैं, मैं नित्य उनका भजन करता हूँ॥२३॥

[२४]

सख्वीतारुणदिव्यपीतवसनं दिव्यप्रसूनोल्लसद्-
वेणीदिव्यशिखण्डमण्डल-लसच्चूड़ा-मिथो-मण्डितम् ।
ताटङ्कोज्ज्वल-दिव्य-रत्नमकरोदारस्फुरत्कुण्डलं
गौरश्यामकिशोर दिव्यमिथुनं ध्यायामि वृन्दावने ॥

जो लालरङ्ग के दिव्य वस्त्र धारण कर रहे हैं, जो एक दूसरे के दिव्य फूलों से सुशोभित वेणी तथा दिव्य मोर-पुच्छयुक्त चूड़ा को सजाते हैं, ताटङ्क (वाली), उज्ज्वल दिव्य रत्नमय मकराकृति सुन्दर कुण्डल जिनके कानों में सुशोभित हैं, उन गौरश्याम दिव्य युगलकिशोर का मैं श्रीवृन्दावन में ध्यान करता हूँ॥२४॥

[२५]

गोवत्सैः परिमण्डितं क्वचिदहो हम्बारवाडम्बरं
कुर्वद्भिर्मुहुरम्बरं क्वचिदतिक्रीड़ा-विलोलार्भकम् ।
कुत्राप्युन्मद-नव्यगोपतरुणी-यूथोत्सवं कुत्रचिद्-
राधाकृष्ण-विलासमोहनमहं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

कहीं गो-वत्स बार-बार हम्बारव से इधर-उधर शोर करते हुए शोभित हो रहे हैं, और कहीं अति चञ्चल बालकगण क्रीड़ा में उन्मत्त हो रहे हैं। और कहीं उन्मत्त नवीन गोप-बालाओं के यूथों में उत्सव हो रहा है। और कहीं श्रीराधाकृष्ण के विलासादि से यह श्रीवृन्दावन महामनोहर हो रहा है, मैं इसका ध्यान करता हूँ॥

[२६]

राधाकृष्णानन्यभावैकगम्यं-रम्यं दिव्यारण्यतो नन्दनादेः ।
वृन्दारण्यं सच्चिदानन्दसान्द्रं-ज्योतिर्रूपं दिव्यदिव्यं श्रयामि ॥

श्रीराधाकृष्ण के अनन्य भावपूर्ण होने से ही प्राप्त होने वाले दिव्य-दिव्य नन्दन वनादिकों से भी महारमणीय, सच्चिदानन्दघन ज्योतिस्वरूप दिव्यातिदिव्य श्रीवृन्दावन का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥२६॥

[२७]

प्राणान्तेऽपि न सङ्गतिं विरचयन् स्त्रीणां न तत्सङ्गिना-
मेकं क्वापि निषद्य मत्तरुतले सास्रं प्रियाख्यं जपन् ।
मौनी लोकसमागमे निरवधि क्षौणीव सर्वंसहो
राधाकेलिबने तृणादपि कदा नीचो निवत्स्याम्यहम् ॥

चाहे मेरे प्राण चले जायें, तो भी स्त्रियों का सङ्ग अथवा स्त्रियों का सङ्ग करने वालों का सङ्ग न करके, एकान्त में किसी सुन्दर वृक्ष के नीचे बैठ कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्रिय हरि-नाम का जप करते हुए, किन्तु लोगों के आने पर मौन धारण करके, तथा नित्य ही पृथ्वी की भांति सब कुछ सहन करते हुए कब इस श्रीराधाकेलिवन में तृण से भी नीच होकर मैं वास करूंगा ?॥२७॥

[२८]

कोटिः कामगवां च सद्विटपिनां वाटीश्च कोटिस्तृणैः
कौदार्यातिविभूतिभिर्विधुवती पेटीश्च चिन्तामणेः ।

दिव्यैश्चन्दनपारिजात प्रमुखैर्वृतावृता चिन्मयै-
र्जीयात् कुञ्जकुटीघटातिमधुरा राधाविहाराटवी ॥

जहाँ कोटि कामधेनु तथा कोटि दिव्य वृक्ष-वाटिकाएं विराजमान हैं, जहां सुन्दर तृणों से संच्छादित कुदार (लाल काञ्चन) वृक्षों की अति सुन्दर शोभा है ; जहाँ अनेक चन्द्रमुखी युवतियों का निवास है, जहाँ अनन्त चिन्तामणि हैं एवं दिव्य चिन्मय चन्दन पारिजात वृक्षों से परिवृत कुञ्जकुटीरें शोभित हैं, ऐसे महामधुर श्रीराधा-विहारवन की जय हो ॥२८॥

[२६]

हास्योरुच्छटयाम्बरे विरचयन्नाश्चर्यकुन्दस्रजं
दृक्पातैर्दिशि दिश्यहो कुवलयश्रेणीं समुन्मीलयन् ।
उत्फुल्लस्थलपङ्कजामिव भुवं कुर्वन् पदन्यासतो
ध्येयो मे सह राधया मुहुरटन् वृन्दावने माधवः ॥

हंसी की छटाओं से आकाश में आश्चर्यजनक कुन्दमाला रचना करके, दृष्टिपात से प्रति दिशा में नीलकमल-समूह प्रकाशित करते हुए एवं चरण धरते समय पृथ्वी को अपने चरण कमलवत् प्रतीयमान कराते हुए श्रीराधाके सहित श्रीवृन्दावन में जो श्रीमाधव भ्रमण कर रहे हैं, वे हमारे ध्येय हैं ॥२६॥

[३०]

बारं बारमुदश्रु जीवनयुगाक्रीड़े निकुञ्जे विशन्
गायंस्तच्चरितं द्रवन्नतिभिया सङ्गाद्भुजङ्गादिव ।
क्षुद्बाधे मितशुष्कपत्रफलभुक् तर्षेऽम्बु कामं पिबन्
श्रीवृन्दाविपिने कदातरुतलान्येवावसन् स्यां सुखी ॥

बारंबार अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्राण-प्रियतम युगलकिशोर के प्रमोदवन-निकुञ्जों में प्रवेश करके, उनके चरित्रों को गान करते

हुए, लोक-सङ्ग से साँप के काटने के समान भयभीत होकर दूर रह कर, क्षुधा के समय परिमित सूखे पत्र फल खाकर तथा तृषा में यथेष्ट जलपान करते हुए कब श्रीवृन्दावन में वृक्षों के तले वास करके मैं सुखी होऊंगा ? ॥३०॥

[३१]

श्रीगान्धर्वारसिक ! मुरली-मण्डित-श्रीमुखेन्दो !
कान्तावक्लृप्त-स्वकरनिहितोदारगुञ्जोरुहार !
प्रेयस्यैव प्रणयरचिताश्चर्यचूड़ाशिखण्ड !
प्रत्यङ्गोद्यत पुलक ! हृदि मे क्रीड़ वृन्दावनेऽद्य ॥

हे श्रीराधारसिक ! हे मुरली शोभित सुन्दर मुखचन्द्र ! प्रियतमा द्वारा ग्रथित एवं उसके हाथों से बनी हुई सुन्दर गुञ्जामाला धारण करने वाले ! प्रेयसी द्वारा ही प्रीतिपूर्वक बनाए हुये अद्भुत मोरपुच्छ-निर्मित चूड़ा से शोभित ! हे प्रति अङ्ग में पुलकायमान होने वाले ! आज मेरे हृदय रूप श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा करो ॥३१॥

[३२]

सर्वाङ्गे पुलकावलीमरुणतामदृणोर्वचोऽनन्वयं
यानञ्च स्खलितं मिथः कलहनं केशाम्बरासंवृतिम् ।
माल्यादित्रुटनं मुहुः प्रहसितं भूयोरसात्युन्मदं
यत्राभूद्द्वय गौरनीलमहसस्तन्नौमि वृन्दावनम् ॥

गौरनील श्रीयुगलकिशोर के सर्वाङ्गों में पुलक, लोचन-युगल में अरुणता, वाक्यों में असामञ्जस्य, चाल में स्खलन, परस्पर प्रेम-कलह, केश-वसनादि का खोलना, मालादि का तोड़ना, बार-बार हंसी, पुनः पुनः रस में महा उन्मत्तता इत्यादि (विनोदमय-लीलाएं) जहाँ प्रकटित होती हैं, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ ॥

[३३]

प्रेमान्धाखिलचिद्घनस्थिरचरं चन्द्रैरनन्तैरिवो-
द्दीप्तं श्रीमुखचन्द्रिकोच्छलनतः श्रीराधिकाकृष्णयोः ।
सर्वार्थानतितुच्छयन् निजरसश्रीणां चमत्कारतः
श्रीवृन्दावनमेव सर्वपरमं सर्वानपेक्षो भजे ॥

श्रीराधाकृष्ण के श्रीमुखचन्द्र के प्रकाश से श्रीवृन्दावन ऐसा प्रकाशित हो रहा है मानो अनन्त चन्द्रों से उद्भासित हो, वहाँ की स्थावर-जङ्गम समस्त वस्तुएं चिन्मय एवं प्रेमान्ध हैं, इसने निज रस (श्रीवृन्दावनीय-रस) के सौन्दर्य–चमत्कार से समस्त पुरुषार्थों को अति तुच्छ कर रखा है, ऐसे सर्व प्रकार श्रेष्ठ श्रीवृन्दावन का मैं सर्वभाव से निरपेक्ष होकर भजन करता हूँ ॥३३॥

[३४]

सर्वेषामनुकम्प्यतामिह सतां शिक्षाकृते दण्ड्यतां
वात्सल्यादभिमण्ड्यतां करुणयैवेष्टायतौ खण्ड्यताम् ।
जानन् स्वस्य सुदुर्धियोऽपि न परित्यज्याहमर्त्यर्भवत्
श्रीवृन्दावनमावसामि परमानन्दात्यसीमं कदा ॥

समस्त सज्जन मुझ पर कृपा करें, चाहे शिक्षा के लिए दण्ड ही दें, वात्सल्य भाव से मेरी पालना करें, चाहे करुणाकर मेरे भावी मङ्गलनिमित्त मुझे टुकड़े-टुकड़े कर डालें ; मैं अपनी मन्द बुद्धि को अबोध-बालक की भांति जानते हुए भी इस स्थान को त्याग न करके कब अत्यन्त असीम परमानन्द स्वरूप इस श्रीवृन्दावन-धाम में वास करूंगा ? ॥३४॥

[३५]

राधाकृष्ण-गुणानेव गायं गायमकिञ्चनः ।
अश्रुभिः पङ्किलीकुर्वे कदा वृन्दावनस्थलीम् ॥

अकिञ्चन होकर श्रीराधाकृष्ण के गुणानुवाद को गान करते-करते कब मैं अश्रु-धारा प्रवाह से श्रीवृन्दावन-स्थली को पङ्किल करूंगा ? ॥३५॥

[३६]

स्फुरद्राधापदाम्भोजदास्यलास्यः कदा हृदि ।
आकृत्या च प्रकृत्या च भवेयं विश्वमोहनः ॥

हृदय में श्रीराधा-चरणकमलों की दासता की स्फूर्ति प्राप्त करके नृत्य-परायण होकर आकृति से एवं स्वभाव से कब मैं विश्व-विमोहन हो सकूंगा ? ॥३६॥

[३७]

कदापि पुलकाञ्चितः प्रवहदश्रुधारः क्वचित्
कदाचिदतिगद्गदाक्षर-गृहीत-राधाभिधः ।
कदापि विलुठन् क्षिताविथ कदापि मूर्च्छां गतो
महाप्रणयविह्वलो भ्रमति कोऽपि वृन्दावने ॥

कभी पुलकित होकर, कभी अश्रुधारा से भीज कर, कभी अति गद्गद-स्वर से "राधा" नाम उच्चारण करते हुए, किसी समय भूमि पर लुण्ठन करते हुए, और कभी मूर्छित होकर कोई प्रेम में महा विह्वल-व्यक्ति श्रीवृन्दावन में भ्रमण करता है ॥३७॥

[३८]

अनन्त-रति-मन्मथोन्मथन-दर्पशोभामयं
मिथः प्रणयकीलितं किमपि गौरनीलच्छवि ।
अनन्तरसवारिधौ बुडितमन्तपारोज्झिते
महः प्रथमयौवनं द्वयमुदेति वृन्दावने ॥

अनन्त रति-कामदेवों के मथनकारी दर्प से शोभित, परस्पर के प्रणय में आबद्ध कोई गौरनील विग्रहधारी, अनन्त अपार रस-

समुद्र में निमग्न तथा नवीन वयसयुक्त ज्योति-स्वरूप युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में उदित हो रहे हैं ॥३८॥

[३९]

पततु मदुपरिष्टात् कोटिशो वज्रपातः
सकलभुवनदाही वह्निरभ्युत्थितोऽस्तु ।
उदयतु लयकालोच्चण्डमार्तण्डकोटि
र्नखलु तदपि वृन्दाकाननं त्युक्तु मीशे ॥

मेरे ऊपर कोटि-कोटि वज्रपात हों, और समस्त-भुवनों को जला देने वाली अग्नि ही उत्थित हो जाए, अथवा प्रलयकालीन कोटि-कोटि प्रचण्ड सूर्य ही उदित हो उठें, तथापि श्रीवृन्दावन को त्याग करने के लिए मैं कभी भी तैयार नहीं हूँगा ॥३९॥

[४०]

व्याला उत्कृत्य खादन्त्वथ विकटतमाः कालसर्पा दशन्तु
रोगास्युर्दुश्चिकित्स्या ददतु तत इतः सर्व एवातिदुःखम् ।
अत्युद्विग्नोऽपि धर्मैः मदनविरहितः शीत-वर्षातिवातैः
क्षुत्तृड्बाधास्त्वसह्यास्तदपि नहि पदं यामि वृन्दाटवीतः ॥

व्याघ्रादि हिंसक जन्तु मुझे चीर-फाड़ कर भोजन कर जाँय, और महा विकट काल सर्प काट खाएं, चिकित्सा में असाध्य रोग ही ग्रस लें, अथवा समस्त लोक ही मुझे अति दुख दें, सर्दी, वर्षा, झञ्झावात् मय ऋतुओं में आश्रयहीन होकर अति उद्विग्न होते हुए तथा क्षुधा-तृष्णादि अनेक असह्य पीड़ाएं क्यों न मुझे दुख दें, तथापि श्रीवृन्दावन से एक पद भी ना हटूंगा ॥४०॥

[४१]

नैव प्रेक्ष्य मुखं स्त्रिया विषयिणः सम्भाष्य नैव क्वचित्
केषामप्यतिपृच्छतामपि पुरो न व्यज्य दैन्यानि च ।

नाशां कस्यचिदादधन्न दधद्दोषान् यथालाभतः
सन्तुष्टो वस राधिका-पद-रसाविष्टोऽत्र वृन्दावने ॥

स्त्री जाति का मुख न देख कर, विषयी पुरुषों के साथ कभी भी वार्तालाप न करके, अतिशय पूछने पर भी किसी को अपना दीनता-भाव प्रकाश न करते हुए, किसी की आशा न रख कर, किसी को दोष न देकर, यथा-लाभ-सन्तुष्ट होकर, श्रीराधाजी के चरणकमलों के सेवारस में आविष्ट होकर इस श्रीवृन्दावन में वास कर ॥४१॥

[४२]

नित्याश्चर्यानन्तमाधुर्यधुर्यं यस्मिन्नास्ते प्रस्फुरद्दिव्यकुञ्जम् ।
राधाकृष्णाभङ्गुरानङ्गकेलि-श्रीमद्वृन्दाकाननं तत् प्रपद्ये ॥

जहाँ नित्य आश्चर्य अनन्त माधुर्य श्रेष्ठ दिव्य-दिव्य कुञ्जें प्रकृष्ट रूप से स्फुरित हो रही हैं, श्रीराधाकृष्ण के नित्य-वर्द्धनशील अङ्ग-विलास की सम्पत्ति एवं शोभायुक्त इस श्रीवृन्दावनका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥४२॥

[४३]

सान्द्रानन्दापार-चिज्ज्योतिरेकाम्भोधिद्वीपे भाति वृन्दाटवीयम् ।
तत्रैवानाद्यन्त-कन्दर्पकेलि-गौरश्यामावाश्रये श्रीकिशोरौ ॥

सान्द्रानन्द के अपार चिनमय-ज्योति-समुद्र में एक श्रेष्ठ द्वीप यह श्रीवृन्दावन प्रकाशित हो रहा है, यहाँ ही अनादि अनन्त कंदर्प कला-परायण गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर की मैं शरण लेता हूँ ॥४३

[४४]

दिव्यस्निग्धस्वर्णगौराङ्गरोचिः सिन्धूल्लोलैर्लुम्पती दिग्विभागम् ।
जीयत् कृष्णप्रेम-माधुर्यसीमा वृन्दाटव्यां कापि दिव्यकिशोरी ॥

दिव्य-स्निग्ध-स्वर्ण-गौरकान्ति के समुद्र की विशाल तरङ्गों को

दिशा-विदिशा में प्रसारित करने वाली एवं कृष्ण-प्रेम की माधुर्य-सीमा, कोई एक दिव्य किशोरी श्रीवृन्दावन में सर्वोत्कर्षयुक्त विराजमान है ॥४४॥

[४५]

शुद्धानन्ता स्वाद्यरस्यात्मसच्चिज्ज्योतिःसिन्धोरन्तपारोज्झितस्य ।
गौरश्यामं कामलोलं किशोरं सारद्वन्द्वं पश्य वृन्दावनान्तः ॥

विशुद्ध, अनन्त आस्वाद्य, रसात्मक सच्चिद्-ज्योतिर्मय असीम समुद्र के सारस्वरूप काम-चञ्चल गौर-श्याम श्रीयुगलकिशोर के श्रीवृन्दावन में दर्शन कर ॥४५॥

[४६]

एकैकाङ्गच्छबिभिरखिलद्वैतमाच्छादयन्ती
माधुर्यौघं कमपि दधति दिव्यलीला कलाभिः ।
कापि श्यामप्रणय-विकल-स्वर्णगौराङ्गवल्लि-
र्वृन्दारण्ये विलसति महारूपराशिः किशोरी ॥

प्रत्येक अङ्ग की कान्तिसे ही अखिल द्वैत-वस्तुओंको आच्छादन करने वाली, दिव्य-लीला-कला-समूह द्वारा अनिर्वचनीय अपूर्व माधुर्य धारा-प्रवाह धारण करने वाली, श्रीश्यामसुन्दर के प्रणय में व्याकुल स्वर्ण-गौरलता के सदृश कोई महारूप-लावण्यशालिनी किशोरी श्रीवृन्दावन में विलास कर रही है ॥४६॥

[४७]

श्रीगांधर्वा-पदकमलयोर्दास्यलास्योपलम्भे
तज्ज्ञा यत्साधनमुपदिशन्त्युपरो मादृशोऽत्र ।
तस्मात् पापो यदि च सुकृती निन्दितो वन्दितो वा
वृन्दारण्यं सुशरणमयेऽकुण्ठराधाप्रकाशम् ॥

श्रीराधाजी के चरणकमलों के दास्य-लास्य की प्राप्ति के लिए

अभिज्ञ व्यक्ति जो जो साधन उपदेश करते हैं, उसमें मुझ जैसे व्यक्ति को कोई फल नहीं मिलता, अतएव पापी या पुण्यात्मा, निन्दित या वन्दनीय होकर भी निश्चित रूप से श्रीराधाजी को प्रकाशित करनेवाला श्रीवृन्दावन ही अत्युत्तम शरण लेने योग्य है॥

[४८]

दुश्चेष्टानां दुर्मतीनाञ्च कोटिःकोटिर्घोरानर्थदुर्वासनानाम् ।
कामं वृन्दाकानने मेऽस्तु मास्तु श्रीराधाया विस्मृतं नाममात्रम् ॥

इस श्रीवृन्दावन में मुझ से कोटि-कोटि दुश्चेष्टाएं हों या कुमति उदय हों, या घोर अनर्थ तथा दुर्वासनाएं उदित हों, तथापि एकमात्र श्रीराधा-नाम मुझे कदापि विस्मृत न हो ॥४८॥

[४९]

उन्मीलन्मधुराङ्गभङ्गिम-नटन्नेत्राञ्चली-लीलया
सव्रीड़स्मित-माधुरीभिरसकृच्छ्रीराधयोत्थापितैः ।
अत्युग्रैरसितस्मरैः प्रतिपदं दिग्धालिविद्धान्तरः
कोऽपि श्यामकिशोरकोऽतिविकलो वृन्दावने भ्राम्यति ॥

मधुर अङ्ग-भङ्गी दिखाकर एवं नृत्यपरायण अपाङ्ग विक्षेप-लीला से शोभित श्रीराधाजी के बारम्बार उद्दीप्त लज्जायुक्त मृदु-मधुर-हास्य-माधुर्यरूप अति विषम अनुपम काम-बाणों से प्रति-पद पर जिनका मन विषैले भँवरे (वृश्चिक) के दंशन के समान जर्जरित होता है—वे अतिचञ्चल श्रीश्यामकिशोर श्रीवृन्दावन में ही भ्रमण कर रहे हैं ॥४९॥

[५०]

यत् सौदर्यं यद्वयो ये च भावा या वैदग्धया याश्च गौराङ्गभङ्ग्यः ।
या दिक्चक्राच्छादि-लावण्यवन्यास्ता नो भावे राधिकायाः स्फुरन्तु ॥

श्रीराधिकाजी का जो सौन्दय एवं वयस है तथा जो समस्त भाव हैं, वैदग्धी है, उनके गौर-देह की जो भङ्गिमा है, समस्त

दिशाओं को पूरित करने वाली जो लावण्य-वण्या है, वे समस्त ही मेरे चित्त में स्फुरित हों ॥५०॥

[५१]

पूर्णप्रेमामृतरसनिधी दिव्यदिव्यौ किशोरौ
गौरश्यामाद्भुत नववयो-रूपलावण्यराशी ।
वृन्दारण्ये सहजमदनोन्मत्तलीला-विहारौ
नित्यं भावामृत-सुमधुरे चेतसि प्रस्फुरेताम् ॥

पूर्ण प्रेमामृत-रस-समुद्र, अति दिव्य, गौरश्याम-वर्ण अद्भुत नवीन वयसयुक्त, रूप-लावण्यराशि धारण करने वाले तथा श्रीवृन्दावन में सहज मदनोन्मत्त-लीला-विहारी युगलकिशोर सुमधुर भावामृतपूर्ण हृदय में नित्य स्फुरित हों ॥५१॥

[५२]

कुञ्जे कुञ्जेऽतिरङ्गादहह विहरतो यत्र राधाव्रजेन्दु
वृक्षे वृक्षे च यत्र प्रविलसति महादिव्यगन्धप्रसूनम् ।
पुष्पे पुष्पे मदान्धीकृत-मधुपकुलं स्यन्दमानामृतौघं
मोघं जन्मादि सर्वं तव यदि भजसे नैव वृन्दावनं तत् ॥

अहो ! जहां कुञ्ज-कुञ्ज में श्रीराधाजी तथा श्रीव्रजचन्द्र अति आनन्द से विहार कर रहे हैं, जहाँ के वृक्ष-वृक्ष में महा दिव्य-सुगंधियुक्त पुष्प प्रस्फुटित होते हैं, जहाँ प्रत्येक पुष्प पर मदान्ध मधुकर विचरण कर रहे हैं, अमृत-प्रवाही उस श्रीवृन्दावन का यदि तू भजन नहीं करता हैं, तो तुम्हारे जन्मादि समस्त व्यर्थ हैं॥५२॥

[५३]

यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि न मनाक् सन्ति स्वकार्यैर्न वा
कालस्य प्रभूतास्ति सर्वमहतो देवादयः के परे ?
स्वात्मज्ज्योतिषि शुद्धचिद्रसघने वृन्दावने पावने
तस्मिन् मा कुरु मूढ़ ! दृष्टिमनृतां धैर्येण नित्यं वस ॥

हे मूर्ख ! जहाँ सत्त्व, रज् व तमः विन्दुमात्र भी नहीं हैं, सर्व-श्रेष्ठ काल का भी जहां कुछ प्रभाव नहीं है, देवताओं का तो कहना ही क्या है ! स्वात्म-ज्योति विशुद्ध चिद्रसघन उस पवित्र श्रीवृन्दावन में असत्य-दृष्टि ना करके धैर्य पूर्वक नित्य वास कर ।।५३।।

[५४]

देहार्थेहा-सुनीचाचरणमतिरलं-संस्तुतौ वाच्य-बुद्धिः
सम्पद्यापन्मतिः क्वाप्यहह न ममधीः स्त्र्याकृतौ राक्षसी-धीः ।
व्यर्थात्याभारबुद्धिः कुवपुषि जनता-सङ्गतौ सर्वबुद्धिः
स्वस्मिन् सर्वोत्तमेऽप्यत्यधमतम-मतिस्तिष्ठ वृन्दावने भोः ॥

अहो ! जीविका निर्वाह के लिए अति नीचवत् चेष्टा करते हुए, अति प्रशंसा को साधारण वाक्य मात्र जानकर, सम्पत्ति की प्राप्ति को आपत्ति जान कर, किसी में भी ममत्व-बुद्धि न करके, स्त्री जाति की आकृति में राक्षसी-बुद्धि करके, इस कुत्सित देह को अति-व्यर्थ भार जानते हुए एवं लोगों से मेल-जोल को सर्प जान कर तथा सर्वोत्तम होते हुए भी अपने को अति अधमतम जान कर तू श्रीवृन्दावन में वास कर ।।५४।।

[५५]

न स्त्री न स्त्रीप्रसङ्गी मिलति यत इदं स्थानमाश्रित्य सर्व-
द्वन्द्वातीतोऽत्र कन्दादिभिरपरवशैः कल्पयन् देहवृत्तिम् ।
भावेनात्युज्ज्वलेनात्मनि मधुरतरे न्यस्य राधापदाब्ज –
द्वन्द्वं वृन्दावनान्तर्गमय दिननिशा नित्य-तन्नाम-जापी ॥

स्त्री वा स्त्री प्रसङ्गी यहाँ हैं ही नहीं—ऐसा जानकर श्रीवृन्दावन का आश्रय करते हुए, समस्त द्वन्दों से परे रह कर, निरपेक्षभाव से कन्द मूल फलादि द्वारा देह की रक्षा करते हुए, अत्युज्ज्वल भाव से मधुरतर अपने चित्त में श्रीराधा-चरणकमलों को बसा कर नित्य उनका नाम जप करते करते श्रीवृन्दावन में दिन-रात व्यतीत कर ॥

[५६]

विड्भाण्डेऽस्मिन् कुदेहे हरि हरि ममतां मुञ्च निष्किञ्चनानां
सङ्गे रङ्गं विधेहित्यज कनक-वधु-दर्शनं दूरतोऽपि !
मत्वा मानावमानौ विषमविष-सुधासारवत् सर्वदुखं
सोढ्वा सोढ्वा द्रढ़ीयान्नति-रतिप्रणयादास्स्व वृन्दावनेऽस्मिन् ॥

हाय ! हाय !! विष्ठा-पात्र इस कुत्सित् देह की ममता त्याग कर, निष्किञ्चन सन्तपुरुषों का सङ्ग कर, कामिनी-काञ्चन को देखना दूर से ही त्याग कर, अपमान को मान, विषम विष को परम अमृत-सार जानकर तथा समस्त दुखों को सहन करते करते दृढ़ता-पूर्वक अति अनुराग से इस श्रीवृन्दावन में वास कर ॥५६॥

[५७]

कश्चिद्वञ्चित-साध्यसाधनगणं निर्भ्रष्टकालादिक-
त्रासं निर्हत-पापपुण्यविषयं निष्पीत-तापत्रयम् ।
निर्भातं सकलत्रयीहृदयतोऽप्यत्यन्तदूरे महा -
चित्रप्रेमरसोर्मि-दिव्यवनराट्चूड़ामणिं चिन्तय ॥

समस्त साध्य-साधनों को प्रतारण करने वाले, कालादि भय-समूह को निर्मूल करनेवाले, पाप-पुण्य विषय के विनाश करनेवाले तीनों तापों को नष्ट करने वाले, समस्त वेदों के हृदय से भी अत्यन्त दूर प्रकाशित होने वाले, एवं महा विचित्र प्रेम-रस-प्रवाहयुक्त दिव्य वनों के राज-शिरोमणि इस श्रीवृन्दावन की चिन्ता कर ॥५७॥

[५८]

द्वन्द्वीभाव-निजस्वभाव-सहजात्याश्चर्य-कैशोरकं
श्रीवृन्दावन नित्यकेलि मिथ आनन्दं मिथो जीवनम् ।
तादात्म्यप्रणयाद्भजामि ललिता-प्राणं मिथः सन्ततो-
तुङ्गानङ्गतरङ्गसञ्चय-चलं गौरसिताङ्गं महः ॥

युगल-भाव को प्राप्त, निज स्वभाव-सुलभ अत्याश्चर्य मय किशोर-अवस्थायुक्त, श्रीवृन्दावन में नित्य केलि-परायण, एक दूसरे को आनन्द प्रदान करने वाले, एक दूसरे के प्राण जीवन तथा परस्पर एकात्म प्रणय के लिए नित्य-वृद्धिशील काम-तरङ्गों के प्रवाह में चञ्चल, ललिताजी के प्राण-स्वरूप श्रीगौरश्याम विग्रह का भजन कर ॥५८॥

[५६]

नवकनकसुगौरनीलरत्न-प्रकरसुनीलसुदारदिव्यलीलम् ।
मिथुनमभिनवं नवानुरागोन्मद-मदनातुरमद्भुतं भजामि ॥

गलित स्वर्णवत् सुगौरवर्णा तथा नील कान्तमणि-समूहवत् सुनीलवर्ण-सुन्दर महा दिव्य लीलाकारी, नव-नव अनुराग में उन्मत्त कामातुर अद्भुत अभिनव श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ ॥५६॥

[६०]

परमरससमृद्धिकन्द-वृन्दावनभुवि दिव्यकिशोरयोः कयोश्चित् ।
नव-मदनविलास-चापलानि स्मर नवहेममहेन्द्रनीलभासोः ॥

परम रस की समृद्धि के बीज स्वरूप इस श्रीवृन्दावन की भूमि में नवीन स्वर्ण तथा इन्द्रनीलमणि की कान्तियुक्त दिव्य युगल-किशोर की नव-काम चञ्चलता का स्मरण कर ॥६०॥

[६१]

द्वयमतिरसधाम-गौरनीलाद्भुतरुचि-नित्यकिशोरमुन्मदान्धम् ।
नवनवरतिलालसेन वृन्दावनभुवि तन्मम नित्यमस्तु सेव्यम् ॥

अतिशय रसमय वपुधारी, गौरनील अद्भुत कान्तियुक्त, नव-नव रति-लालसा में उन्मत्त, अन्ध, नित्य-किशोर (श्रीश्यामा-श्याम) इस श्रीवृन्दावन में हमारे नित्य सेव्य हों ॥६१॥

[६२]

भरितदशदिगन्तकान्तिपूरं द्वयमतिदिव्यमहः सदा किशोरम् ।
कनकमरकताभमस्तु वृन्दावनरस विह्वलमेव मे निषेव्यम् ॥

कान्ति-प्रवाह से दशोदिशाओं को पूर्ण करने वाले, दिव्य विग्रहधारी, श्रीवृन्दावन-रस में विह्वल, स्वर्ण-नील कान्तिधारी नित्य-किशोर (श्रीश्यामा-श्याम) हमसे सेवित हों ॥६२॥

[६३]

सर्वानन्दरहस्यमत्र सकलप्रेम्णां रहस्यं त्विह
दीप्तीनां सुरहस्यमत्र प्रमदस्यास्मिन् रहस्यं परम् ।
आमोदस्य रहस्यमत्र मदनस्यास्मिन् रहस्यं परं
वैदग्धीसुरहस्यमत्र यदिदं वृन्दावनं मोहनम् ॥

यहां श्री वृन्दावन में ही सर्वानन्द का रहस्य है, समस्त प्रेम का रहस्य है, यहाँ समस्त दीप्ति का सुरहस्य है, इसी स्थान पर ही प्रेम-मत्तता का परम सुरहस्य है एवं यहाँ आमोद का भी रहस्य है, और मदन का परम रहस्य तथा वैदग्धी का सुरहस्य भी यहां प्रकटित है । इसी लिए ही श्रीवृन्दावन सर्वभाव से मनको हरण करने वाला है ॥६३॥

[६४]

पूर्णाः स्वर्णाम्बुजमरकताम्भोजगर्भातिगौर-
श्यामाः कामात्मक-रसघनस्यान्तरध्येमि कान्तिः ।
कस्याप्येकात्म उरुमद-श्रीकिशोरद्वयस्य
श्रीमद्वृन्दावनमनु सदा क्रीड़तो वर्द्धितृष्णम् ॥

श्रीमद्वृन्दावन में वृद्धिशील तृष्णा से क्रीड़ा परायण, एक प्राण, अति उन्मत्त, कामात्मक रसघन श्रीयुगलकिशोर में स्वर्ण-कमल एवं नील कमल के गर्भवत् अति गौर एवं अति नील कान्ति के प्रकाश का मैं ध्यान करता हूँ ॥६४॥

[६५]

श्रीवृन्दारण्यमेतद्द्वयमपि च तदेकात्मकं धाम गौर–
श्यामं तत्प्राणसख्योऽपि च परमरसं प्रीतिमात्रं विदन्ति ।
तेनात्यन्तापराधिन्यपि मयि मधुरं तन्महाश्चर्यवृन्दं
नैवोपेक्षां विदध्यादजनि यदि सकृत्तत्-स्वसम्बन्धगन्धः ॥

श्रीवृन्दावन, श्रीवृन्दावन के प्राण-स्वरूप गौर-श्याम युगल किशोर, उनकी जीवन-स्वरूप सखीवृन्द, जो केवल परम रस तथा प्रीति को ही जानती हैं, एवं वहाँ उनकी आश्चर्यमय मधुर वस्तुएं, इनमें से कोई भी मुझ जैसे अति अपराधी की उपेक्षा नहीं करेगा, यदि एक बार भी श्रीवृन्दावन के साथ मेरा कोई भी लेश-मात्र सम्बन्ध होजाये ॥६५॥

[६६]

यस्मादेव प्रवृत्तिं सकलतनुभृतामुत्तमे वाऽथ हीने
कर्म्मण्यस्योत्कटेच्छा समुदयति यतस्ते वने हेतवश्च ।
संयोगं प्राप्नुवन्ति प्रसरति परमा सर्वभोगे विरक्ति-
र्ज्ञानं भक्तिर्महत्सङ्गति–परिचयतस्तं स्वतन्त्रेशमीडे ॥

जिससे समस्त प्राणियों की उत्तम या हीन कर्मों में प्रवृति होती है, जिसकी प्रेरणा से श्रीवृन्दावन वास करने की जीव में उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है, जिसकी इच्छा से इस प्रकार वास करने की परम्परा घटना उपस्थित होती है कि समस्त भोगों से परम वैराग्य होने लगता है एवं महत् सङ्ग का परिचय-ज्ञान एवं भक्ति-आदि प्राप्त होते हैं—उस स्वतन्त्र ईश्वरी-शक्ति की मैं स्तुति करता हूँ ॥६६॥

[६७]

सर्वोऽप्यद्भुतशक्तिराशिरखिलाधीशस्य तत्तत्तनु–
ष्वानन्दैकविलासवान् निजमहापूर्णात्म-शक्त्याश्रयात् ।

संजीवत्यथ चेष्टते निजनिजे कार्ये तमेवाद्भुत –
स्वातन्त्र्यं परमं परेणमहमानन्दैकवृत्ति श्रये ॥

अखिलाधीश्वर की जिस निज महापूर्ण-आत्मशक्ति को प्राप्तकर समस्त अद्भुत शक्तियां पृथक-पृथक देहों से आनन्दपूर्वक विलास परायण होती हैं, जीवन धारण करती हैं तथा अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होती हैं—उस अद्भुत परम-स्वतन्त्र परम-महानन्द वृत्ति-युक्त वस्तु का ही मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥६७॥

[६८]

आनन्दानां परमचरमो योऽवधिर्वैष्णवानां
सर्वोर्ध्वानां सकल-हरिशक्त्युन्नतीनाञ्च यो वा ।
सम्पूर्णानां परमभगवत्सद्गुणानां च यो वा,
स श्रीवृन्दावनभुवि नरीवर्ति सर्वोर्ध्वधाम्नि ॥

वैष्णवों के लिए जो समस्त आनन्द की परम चरम-सीमा है, हरि की सर्वोर्ध्व समस्त शक्तियों की भी जो चरम शेष सीमा है, एवं परम भगवान् के सम्पूर्ण उत्तम गुणों की जो अन्य सीमा है, वह समस्त ही सर्वोर्ध्व-धाम श्रीवृन्दावन में अधिक रूप से वर्त्तमान है ॥ ६८ ॥

[६९]

सर्वधर्मविमुखं सदा सकलपापकर्म्माकरं
समस्तगुणवर्जितं सकलसत्तमोपेक्षितम् ।
अहो सकलपामरैरपि वहिष्कृतं दूरतः
कथं सहजवत्सला त्यजतु माऽपि वृन्दाटवी ॥

सर्व-धर्म-विमुख, नित्य सकल पाप कर्मों का अनुष्ठान करने वाला, समस्त गुणों से रहित, समस्त साधुओं से उपेक्षित, अहो !

सकल नीच पामर व्यक्तियों ने भी जिसे दूर से वहिष्कृत कर दिया है, ऐसे मुझ को क्या सहज-वत्सला श्रीवृन्दाटवी त्याग कर देगी ? ॥६६॥

[७०]

अनाथजनपावनं सकलपापविद्रावणं
महारतिसुधाभरैः सकलचित्तविद्रावणम् ।
सहेशकृतभावनं सहरि-राधिका-जीवनं
महापतितपावनं जयति धाम वृन्दावनम् ॥

अनाथ जन-पावन, सकल पाप-नाशक, महारतिरूप अमृत वर्षा से समस्त जीवों के चित्त को द्रवीभूत करने वाले, अपने-अपने ईश्वर सहित ब्रह्माण्डों से चिन्तनीय, श्रीहरि एवं श्रीराधा के जीवन तथा महा पतितपावन श्रीवृन्दावन धाम की जय हो ॥७०॥

[७१]

त्वं मातेव पितेव सत्सुहृदिव भ्रातेव सद्बन्धुवत्
कान्तावत् परदेवतेव गुरुवत् सन्नेत्रवत् प्राणवत् ।
सर्वस्वैकनिधानवत् स्वमृतवत् सत्पुत्रवत् स्वात्मवत्
श्रीवृन्दावन ! राधिका-रसिकमौल्यानन्द ! नित्यं भव ॥

हे राधिका व रसिक-चूड़ामणि आनन्द-प्रद श्रीवृन्दावन ! आप नित्य ही मातृवत्, पितृवत्, सत्सुहृद्वत्, भ्रातृ के समान, सद्बन्धुवत्, कान्तातुल्य, परमदेवता तुल्य, गुरुवत्, सुन्दर नेत्रवत् तथा प्राणवत् एवं सर्व धन के एकमात्र भण्डारवत्, सुन्दर अमृत-वत्, सत्पुत्रवत् एवं मेरे आत्मातुल्य होकर रहो ॥७१॥

[७२]

स्निग्धस्वर्णसुगौरसुन्दरवपुर्लावण्यपूर्णार्णवे
नव्यप्रेमरसात्मकेन चिदचिद्द्वैतप्रथा-लुम्पकम् ।

अङ्के श्यामकिशोरकस्य जयताद्राधाभिधं किञ्चन
श्रीवृन्दावनसीम्नि सौरतकलाऽपारं किशोरं महः ॥

नवीन प्रेमरस स्वभावयुक्त स्निग्ध स्वर्ण सुगौर सुन्दर देह के लावण्यपूर्ण समुद्र में चित्-जड़ के द्वैत-भाव को विलोप करने वाली, श्रीवृन्दावनस्थित श्याम-किशोर के क्रोड़देशमें असीम सौरत-कला पण्डिता किसी "राधा" नामक किशोरज्योति की जय हो ॥

[७३]

ऐश्वर्याश्चर्यसीमा यदपि भगवतः सद्गुणाश्चर्य सीमा
लीला-माधुर्यसीमा प्रणयरसमद-स्वाद-वैवश्यसीमा ।
सौन्दर्याश्चर्यसीमा नवललितवयःश्रीचमत्कारसीमा
वृन्दारण्य एव प्रविलसति यतोऽतस्तदेवाश्रयेऽहम् ॥

क्योंकि श्रीवृन्दावन—श्रीभगवान् के ऐश्वर्याश्चर्य की सीमा है, लीला माधुर्य की सीमा, प्रणयरस-मद के आस्वादन जनित वैवश्य की सीमा है तथा सौन्दर्याश्चर्य की सीमा एवं नव्य ललित रस की, श्री-चमत्कारकी सीमा है,अतएव मैं उसका ही आश्रय ग्रहण करता हूँ

[७४]

यत्स्पर्शादेव सद्यः प्रमद-हरिरसाविष्ट-चिन्मूर्त्तिभाजो
जीवाजीवाः पदार्थास्त्रिगुणमयतया नित्यसंस्पर्शशून्याः ।
सर्वे भान्ति स्वभासा शुभविमल-महाचिद्रसैकात्मशक्तिः
सेयं वृन्दाटवीयावर्निरखिल महाचिन्मया पर्युदेति ॥

जिसके स्पर्शमात्र से ही जीव,जड़-वस्तुएं त्रिगुणमयी माया के नित्य स्पर्श से रहित होकर तत्काल ही प्रमद- हरि रस में आविष्ट हो जाती हैं एवं चिन्मूर्त्ति धारण कर लेती हैं, तथा सब ही अपनी दीप्ति से स्वप्रकाश हो उठती हैं, वह शुभ विमल महा चिन्मय रस-स्वभाव शक्ति शालिनी व अखिल महा चिन्मयात्मक वृन्दावनीय भूमि प्रकाशित हो रही है ॥७४॥

[७५]

श्रीमद्राधा-मुरलीधरयोस्तत्तदाश्चर्यखेला,
योग्य मृग्या भुवि वरहृदा स्वच्छचिद्रत्नभासः ।
अत्याश्चर्यैर्मधुरमधुरा वर्णसंस्थानभेदै-
र्वन्दे वृन्दावनभुव इमाः खण्डयन्तीः षडूर्मीन् ।

श्रीमद्राधा-मुरलीधर की वे समस्त आश्चर्य क्रीड़ाएं, श्रेष्ठ मुनियों द्वारा भी अन्वेषणीय हैं, स्वच्छ चिन्मय दीप्ति युक्त अत्याश्चर्य वर्ण तथा संस्थान आदि के भेद से मधुर से सुमधुर एवं षड़ूर्मी को खण्डन करने वाली- उस श्रीवृन्दावनीय भूमि को मैं नमस्कार करता हूँ ।।७५।।

[७६]

दिव्यैः कुत्रचिदिन्द्रनीलमणिभिजाम्बूनदैः कुत्रचिद्-
वैदूर्यैः क्वचन क चेन्दुमणिभिर्नीहारि-हीरैः क्वचित् ।
मुक्ताभिः क्वचन प्रवालनिबहैः क्वापि क चालोकवि-
ज्ञातैः क्वापि विनिर्मिता विजयते वृन्दाटवीयावनी ॥

कहीं दिव्य इन्द्रमणियों द्वारा, कहीं जाम्बुन्द (स्वर्ण) द्वारा, और कहीं वैदूर्य्य मणि तथा कहीं चन्द्रकान्त मणि द्वारा, एवं कहीं तुषारधवल हीरों द्वारा, कहीं मुक्ताओं के द्वारा, कहीं प्रवाल समूह द्वारा और कहीं अपरिचित अनेक मणि-माणिक्य द्वार खचित श्री-वृन्दावन का पृथ्वी-तल सर्वोत्कर्ष से प्रकाशित हो रहा है ।।७६।।

[७७]

केचित् पीयूषसारोत्तम–परिणतयः केचन क्षीरसारै-
र्दिव्यैः सन्निर्मिता केऽप्यतुलमदकृताभासवानां घनाङ्गाः ।
केचिद् सैतोपलाः केऽप्यतिहिमकरकाः कल्परूपा इति श्री-
वृन्दारण्ये द्रुमेन्द्रा दधति वहुविधा राधिका-कृष्ण-तुष्ट्यै ॥

श्रीवृन्दावन के श्रेष्ठवृक्षगण श्रीराधाकृष्ण की तुष्टी के लिये अनेकविध रूपों से प्रकाशित होते हैं— कोई कोई तो अमृतसार की उत्तम परिणति विशेष है, कोई कोई दिव्य क्षीरसार द्वारा सुन्दर भाव में निर्मित हैं और कोई कोई अतुलनीय मत्तता जनक सुधा-घन अङ्गधारी हैं, कोई कोई स्फटिक मणिवत् हैं और कोई चन्द्र (कर्पूर) की भाँति अति शुभ्र वेशधारी हैं ॥७७॥

[७८]

श्रीराधाकृष्ण-नर्मोक्त्यनुसरणपरा विभ्रतः केऽपि शाखा
भूलग्नाः सूनभारा वहुशत–परितोमण्डपाकाररम्याः ।
हस्तग्राह्यं प्रसूनाद्यथ परशिखरस्थञ्च सन्धारयन्ति
शाखीन्द्रा यत्र धन्या दिशतु मम शिरं सैव वृन्दाटवीयम् ॥

किसी किसी वृक्ष ने श्रीराधाकृष्ण की आज्ञानुसार अपनी शाखाओं को भूमि तक झुका रखा है, वे पुष्पों के भार से नवे हुए हैं, वे संख्या में अनेक हैं एवं इधर-उधर मण्डपाकार में शोभित हैं, किन्हीं २ के पुष्प किशलयादि तो हाथों से पकड़े जा सकते हैं, और कोई बहुत ऊँची २ शाखाओं युक्त हैं, इस प्रकार के भाग्यवान श्रेष्ठ वृक्ष जहाँ शोभित हो रहे हैं, वह, यह श्रीवृन्दावन मेरा मङ्गल विधान करे ॥७८॥

[७९]

केचिन्माध्याह्निकादप्यतिवहल-रुचश्चण्डमार्त्तण्डकोटि–
भ्राजद्दिव्यप्रभा-मण्डलत उरुरुचः केऽपि कल्पाग्निकोटेः ।
केचिद्राकेन्दु कोट्यु ज्ज्वल शिशिर-लसच्चन्द्रिका-चारुरोचिः–
पुञ्जा गुञ्जाभिरामद्यु ति-वितत-महामञ्जुलाः केऽपि यत्र ॥

कोई कोई तो मध्याह्न काल के प्रचण्ड कोटि सूर्यों के दिव्य तेज से भी अधिक कान्ति वाले हैं; और कोई कोटि कल्पाग्नि से

भी अधिक प्रभायुक्त हैं, कोई कोई कोटि पूर्णचन्द्रों की उज्वल शीतल चाँदनी युक्त मनोहर दीप्ति विशिष्ट हैं, और कोई कोई पुष्पस्तवक की मनोरम द्युति प्रकाश विस्तार पूर्वक महामनोज्ञ शाभासमन्वित होकर विराजमान हैं ॥७६॥

[८०]

केचिद्विद्योतमाना द्युतिभिरगणितोद्दीप्तविद्युल्लतानां
विस्फूर्जद्दिव्यकोटिस्फटिकमणि-महास्वच्छभासोऽपि केऽपि ।
केचिद्वालप्रवालाधिक-ललितमहःकन्दली-सुन्दराङ्गाः
केचिन्निर्भान्त्यनन्तद्रुत-कनकरुचो हीरहारत्विषोऽन्ये ॥

कोई कोई असंख्य विद्युत-तरङ्गों की तरह चमक रहा है, और कोई कोई दिव्य स्फटिक मणि की महास्वच्छ किरणें इधर-उधर विकीर्ण कर रहा है, कोई कोई नवीन प्रवाल से भी अधिक सुललित तेजोमय नवाङ्कुरों से सुशोभित है, कोई कोई अनन्त गलित स्वर्ण वर्ण तथा दूसरा कोई कोई हीरों से भी अधिक चमकीला है ॥८०॥

[८१]

केऽपि प्रोत्फुल्लदिव्यस्थलकमलरुचः केऽपि नीलोत्पलाभाः
केचित् कीरानुकारिच्छविनिकरचिताः केऽपि काश्मीरभासः ।
केचिद्भिन्नाञ्जनाभा मरकत मणिवत्केचिदत्युज्ज्वलाभाः ॥
केचित् सत्पाटलप्रोच्चयरुचिर-रुचोऽन्ये जवापुष्पभासः ॥

कोई कोई स्फुटित दिव्य स्थल पद्म की कान्ति धारण कर रहा है, और कोई कोई नीलपद्मवत् दीप्ति मण्डित है, कोई शुक-वर्ण की भाँति कान्ति युक्त है, कोई कुङ्कुमवर्ण है कोई मरकत-मणि तुल्य, कोई अति उज्वल दीप्ति युक्त है, कोई सुन्दर गुलाब समूह की मनोहर कान्ति युक्त हैं; और कोई जुवाकुसम के समान शोभित हो रहे हैं ॥८१॥

[८२]

इत्थं स्वानन्दसच्चिद्रसघनवपुषो यत्र शाखी द्रु-वृन्द-
स्याश्चर्या वर्णभेदा अथ विविधरुचां वीचयो दुर्निरूपाः ।
आकाराणां प्रकारा अपि परमचमत्कारिणां यत्र पुष्पा-
द्यत्याश्चर्यैकसीम्नः स्फुरतु मम सदा सैव वृन्दाटवीयम् ॥

इस प्रकार जहाँ स्वानन्द सच्चिद्रसघन देहधारी श्रेष्ठ वृक्षगणों की आश्चर्यमय वर्णभेद तथा विविध कान्ति की अनिर्वचनीय तरङ्गें उठरही हैं, परम चमत्कारजनक आकृतियों के विविध भेद एवं अति आश्चर्यजनक परम सुन्दर पुष्पादि भी विराजमान हैं, वह-यह श्री वृन्दावन मेरे हृदय में नित्य स्फुरित हो ॥८२॥

[८३]

विचित्रपत्रपल्लव प्रसूनगुच्छजालकै-
रपारमुल्लसन्महा-मरन्दसिन्धुनिर्झरम् ।
विचित्ररोचिषाचितं सुधारसात्मकैः फलैः
स्मरामि कृष्णकानने विचित्रशाखिमण्डलम् ॥

विचित्र पत्र पल्लव पुष्प स्तवक-जाल आदि द्वारा अनन्त भावों से उल्लसित महामधु समुद्र का एक मात्र उत्स, विचित्र कान्तिमय सुधारस विशिष्ट फलों से पूर्ण, श्रीकृष्ण-कानन (श्रीवृन्दावन) के विचित्र वृक्षों का स्मरण कर ॥८३॥

[८४]

अनन्त-हरि-राधिका-प्रणय-फुल्लवल्लीद्रुमं
तदङ्घ्रिरसविह्वलैः खग-मृगादिभिर्मण्डितम् ।
तदद्भुतविलासवन्नवकुञ्जपुञ्जोदयं
स्मराम्यतिमहोज्ज्वलन्मधुरवृन्द-वृन्दावनम् ॥

श्रीराधाकृष्ण के अनन्त प्रणय में प्रफुल्लित वृक्ष-लताएं शोभित हो रही हैं, श्रीयुगलकिशोर के चरण-कमलों के रस में विह्वल पशु-पक्षी आदि द्वारा मण्डित, उनके अद्भुत विलासपूर्ण नव-नव निकुञ्जों से शोभित महा उज्ज्वल माधुर्य-गुण भूषित श्री-वृन्दावन को मैं स्मरण करता हूँ ॥८४॥

[८५]

वैकुण्ठे सकलोज्ज्वलेऽतिमधुरेऽप्यत्युज्ज्वलं माधुरी-
पूर्णं चूर्णयदद्भु तैर्निजगुणैर्निश्रेयसाद्यान्यपि ।
स्वर्णज्योतिरथोन्मदं मरकतज्योतिर्द्वयं तन्महो
विभ्रन्निर्भरकेलि नूतनवयः पश्यामि वृन्दावनम् ॥

सर्वोज्ज्वल, अति मधुर वैकुण्ठ से भी जो अति उज्ज्वल व माधुरीपूर्ण है, एवं समस्त मुक्तियों के गर्व को भी चूर्ण करने वाला है, प्रगाढ़ विलास परायण, उस नवीन स्वर्ण ज्योति तथा उन्मद इन्द्रनीलमणि की ज्योति–शोभा से समुद्भासित श्रीवृन्दावन का मैं दर्शन करता हूँ ॥८५॥

[८६]

प्रकृत्यन्तं गत्वा जड़मनृत–दुखात्मसकलं
परब्रह्मज्योतिः परिचिनु महाविस्तृततमम् ।
ततो दूरे शुद्धस्मररसमयाश्चर्यमधुरो–
ज्ज्वलं ज्योतिःपूर्णं परमिह हि वृन्दावन-वनम् ॥

प्राकृत मिथ्या दुखात्मक जड़ वस्तुओं को अतिक्रम करके महाविस्तृततम परब्रह्म ज्योति का परिचय प्राप्त कर, उससे परे शुद्ध शृङ्गार रसमय एवं अति आश्चर्यमय मधुर उज्ज्वल ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन नामक परम-वन शोभित हो रहा है ॥८६॥

[८७]

इहाश्चर्यं गौरासित–नवकिशोरद्वयमहो
महासौन्दर्यौघं परमसुषमापारमनिशन् ।
स्मरान्धस्वाभाव्यान्नवनवनिकुञ्जेषु विहर–
त्यतिक्रीड़ा–वैदग्ध्यभिनव–चमत्कारमधुरम् ॥

अहो ! यहां आश्चर्यमय गौर-श्याम नव युगलकिशोर महा-सौन्दर्य राशि तथा परम सुषमा को निरन्तर विकीरण करते हुए कामान्ध स्वभाववश अतिशय क्रीड़ा-कुशलता तथा अभिनव चमत्कार माधुर्य विस्तार करके नव-नव निकुञ्जों में विहार करते हैं।।

[८८]

महानन्दानां यत् परमपरमं सारममलं
महासौन्दर्यादेर्यदपि परमान्तावधि पदम् ।
महाश्चर्यानङ्गोन्मदरसविलासैकसुमहा–
चमत्कारो यत्तत्दुभय–महादिव्य–मिथुनम् ॥

महा आनन्द राशि का जो विमल परम सार है, महा सौन्दर्य की जो परम शेष सीमा है, एवं महाश्चर्य अनङ्ग के उन्मद रस का जो एक विलास चमत्कार है,वह यही महा दिव्य श्रीयुगलकिशोर हैं

[८९]

सदाहं तन्मध्येऽप्यतिमधुरिमात्युन्मदरसं
स्मरामि श्रीराधाचरण-कमल–ज्योतिरतुलम् ।
महाविस्तीर्णं तद्घनतनु–किशोरीं नव तड़ि–
ल्लता–गौरीं कान्तिम्रदिम–विजित–स्वर्णलतिकाम् ॥

इन दोनों में भी मैं नित्य माधुर्य की अति उन्मादजनक रस-खानि श्रीराधा के चरण-कमलों की महाविस्तीर्ण अनुपम ज्योति का ही स्मरण करता हूँ , एवं तद्घन विग्रह स्वीय मृदु कान्ति से स्वर्ण-

लतिका को भी परास्त करने वाली किसी एक नव विद्युत-लतावत् गौरवर्ण किशोरी का चिन्तन करता हूँ ।।८९।।

[९०]

दिगन्तप्रच्छादिच्छविमतुल–सौन्दर्यलहरी–
परीतां वैदग्धीनिधिममितभङ्गीमयतनुम् ।
अनन्यां तद्दासीमतिवहलतत्स्नेहविकलां
कलाम्भोधेः पारं परमितवर्ती तत्करुणया ॥

वे अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को आच्छादन करने वाले हैं, अतुल सौन्दर्य तरङ्गों युक्त हैं, वैदग्धी समुद्र, अपरिसीम भङ्गि-मय तनुधारी हैं, श्रीराधा की अनन्या दासी उनके महान स्नेह में विकल रहती हैं तथा उनकी कृपा से कलाओं के सागर को उत्तीर्ण होती हैं ।।९०।।

[९१]

महावेणीपुच्छस्फुरितमणिगुच्छां निदधतीं
दुकूलं संवीतस्तनमुकुलयोर्मूर्ध्नि च मुहुः ।
सलज्जं सस्नेहं समृदुहसितं साङ्गवलनं
विलोकैर्विश्वेषां सहजकुटिलैर्विस्मयकरीम् ॥

उनकी महावेणी के सिरे पर मणिगुच्छ सुशोभित हैं, आवृत स्तनमुकुलों के ऊपर तथा मस्तक पर वार वार वस्त्र ढकती हैं, लज्जायुक्त, स्नेहयुक्त, मन्द मुस्कान तथा अङ्गमोटन के साथ सहज कुटिल दृष्टिपात से सबको विस्मित करने वाली हैं ।।९१।।

[९२]

अतिक्षामां मध्ये पृथुतरनितम्बातिमसृण–
प्रभापूरं दिव्योज्ज्वलरुचिरशाट्यापि दधतीम् ।
क्वणत्काञ्चीदामां रणितमणिमञ्जीरचरणां
स्फुरच्चूडा–रत्नाङ्गद–मृदुलदोर्वल्लि–ललिताम् ॥

उनका कटि देश अति कृश है, पृथु-नितम्ब अत्यन्त मसृण-प्रभा विस्तार कर रहे हैं, दिव्य उज्ज्वल मनोहर साड़ी धारण कर रही हैं काञ्चीमाला का शब्द एवं चरणों में मणि नूपुरों का सुन्दर झनकार होता है, चूड़ा एवं रत्नमय अङ्गदों से भूषित मृदु बाहु-लताएं लालित्य समन्वित हैं ॥६२॥

[६३]

सुचारुग्रैवेयोज्ज्वलपदक–हारावलीरुचिं
सुकर्णे ताटङ्कम् मणिमय मुदारञ्च दधतीम् ।
सुमुक्तां श्रीनासापुटमनु मणिस्वर्णखचितां
दधानां बिम्बोष्ठीं स्फुरदसितविन्दुश्री–चिबुकाम् ॥

सुचारु ग्रीवा में उज्ज्वल पदक हारावली की चमक से सुशोभित है, सुन्दर कानों में मणिमय सुन्दर वाली धारण कर रही हैं, श्री नासापुट में मणि एवं स्वर्ण खचित एक सुन्दर मुक्ता डालायमान है, बिम्बोष्ठ तथा कृष्णवर्ण बिन्दु से सुशोभित चिबुक स्फुरित हो रही हैं ॥६३॥

[६४]

लसन्मुक्तापंक्ति–प्रतिम–दशनश्रेणिविसर–
च्छटौघैः कुर्वाणां दिशमिव चितां कुन्दकुमुदैः ।
सदा राधातीव्र–प्रणयरस–रोमाञ्चित–तनुं
निचोलेनाच्छन्नामतिरुचिरगुच्छाञ्चलवता ॥

मुक्ता की भाँति दन्त पंक्ति से जो कान्ती विस्तार हो रही है मानो दशों दिशाओं में कुन्द-कुमुद फूल बिखर रहे हैं, सदा श्री-राधाजी की तीव्र प्रीति में पुलकित होती हैं। अति सुन्दर स्तवक शोभित अञ्चल युक्त निचोलनी द्वारा सब अङ्गों को आवृत्त कर रही हैं ॥६४॥

[६५]

सदा राधा-पादाम्बुरुह-परिचर्याकुलतया
झनत्कुर्वन्मञ्जीरकमति चलन्तीं तत इतः।
निज प्राणद्वन्द्वाद्भुत-सुरुचि-सौन्दर्यलहरी-
विलासैरानन्दामृतजलधिपूरेऽतिबुड़िताम् ॥ (सप्तभिः कुलकम्)

सदा श्रीराधाजी की चरण सेवा में वे व्याकुल होकर इधर-उधर नूपुरों की झनकार करते हुए अति वेग से घूम रही हैं, अपने प्राण प्रीतम युगलकिशोर की अद्भुत सुन्दर कान्ति सौन्दर्य की विलास तरङ्गों द्वारा आनन्दामृत के समुद्र प्रवाह में अतिशय निमग्न हो रही हैं ॥६५॥

[६६]

महादोषैराढ्यं न खलु गुणलेश्य विषयं
न योग्यं दृक्पातेऽप्यहह सदयानाञ्च महताम् ।
सुदुर्मर्षैः स्वस्मिन्नसकृदपराधैरपि युतं
सुतं मातेव त्वं विसृज वत वृन्दाटवि ! न माम् ॥

महादोषपूर्ण तथा गुणों के लेशमात्र से भी रहित, अहो ! दयालु महात्माओं के सामने आने में भी मैं योग्य नहीं हूँ। और आप में अक्षम्य अनेक अपराध करता हूँ परन्तु हे श्रीवृन्दाटवी! तुम मातृवत् मुझ पुत्र का त्याग नहीं करना ॥६६॥

[६७]

महामूढं पापैर्गुरुभिरखिलैः शोच्यमसता-
मपि स्वप्नेऽपीषन्न नतहरि-तद्भक्तचरणम् ।
स्वकल्याणोपायोषरमशरणं मामव गुणैः
क्षमा-वात्सल्याद्यैरतिमहित-वृन्दावन ! निजैः ॥

अति पूज्यनीय हे वृन्दावन ! महामूढ़ अखिल गुरुतर पाप करने में असाधुगणों से भी मैं शोचनीय हूँ एवं स्वप्न में भी जरा मात्र हरि तथा हरिभक्तों को वन्दना नहीं की है, अपने कल्याण के विषय में भी अचेष्ट हूँ, मुझ अनाश्रय का अपने क्षमा-वात्सल्यादि गुणों से प्रतिपालन कीजिये ।।६७।।

[६८]

तव प्रेष्ठद्वन्द्वं त्वदमलनिकुञ्जेषु विहरत्
सदैवोन्मर्यादं न हि विधिनिषेधादि कलयेत् ।
रमेशित्रोस्तत्त्वं किमपि परमं ध्यानरसदं
ततस्त्वं मां वृन्दावन ! न विसृजोच्छृङ्खलमतिः ॥

हे वृन्दावन ! तुम्हारे निर्मल निकुञ्जों में-रमा व श्रीनारायण इन दोनों के परमध्यानगम्य एवं रसदायी कोई अनिर्वचनीय तत्त्व-रूप से तुम्हारे प्रियतम-युगल नित्य असीम विहार कर रहे हैं, वे विधि-निषेध के प्रति देखते ही नहीं, अतएव हे श्रीवृन्दावन ! मैं उच्छृङ्खल हूँ परन्तु आप मुझे त्याग नहीं करना ।।६८।।

[६९]

क धर्म्मः काधर्म्मः क च विविधमर्यादिक-कथाः
क भद्रं काभद्रं क च विषमदृष्ट्युद्भवलवः ।
इह श्रीमद्वृन्दावनभुवि समस्तं स्थिरचरं
यदि ज्ञातं राधापतिरतिमहाचिद्रसघनम् ॥

इस श्रीमद्वृन्दावन भूमि में समस्त स्थावर जङ्गम को यदि श्रीराधारमण की रतिशील महा चिद्रसघन मूर्ति जान लिया जाय फिर धर्म एवं अधर्म क्या होता है, अनेक विधि-निषेध मर्यादा की क्या बात ? अच्छा और बुरा क्या होता है ? तथा विषम दृष्टि जनित द्वन्द्व का लेशमात्र भी कहां रह जाता है ? ।।६९।।

[१००]

प्रकृत्यन्तर्द्वैतं सकलमपि निष्पीय परमो-
ज्ज्वलं ज्योतिर्मात्रं किमपि विततं ब्रह्म कलये ।
तदध्यैशं ज्योतिः परम-परमानन्द-विततं
ततो दूरे प्रेमोज्ज्वलरसमयं ज्योतिरसितम् ॥

प्रकृति के अन्तर्गत द्वैत वस्तुओं का विशेष रूप से दर्शन करके फिर परम उज्ज्वल विस्तृत ज्योतिस्वरूप एक ब्रह्मपदार्थ की ओर दृष्टि जाती है, उसके परे परम महानन्द विस्तृत ऐश ज्योतिः का दर्शन होता है एवं उससे भी ऊपर परमोज्ज्वल रसमय कृष्ण-ज्योति विराजमान है ॥१००॥

[१०१]

तदन्तः श्रीवृन्दावनमिह महाश्चर्यसुषमा-
वयो-रूपौदार्योन्मद-मदनतृष्णैक-सहजम् ।
महागौरश्यामं द्वयमतिमहानन्दसुघनं
महाभावोन्मीलन्मधुरतरदास्येन भज भोः ॥१०१॥

उसके बीच यह श्रीवृन्दावन है-यहाँ महाश्चर्य सुषमा मण्डित वयस, रूप, उदारता आदि से उन्मत्त मदन-तृष्णैक स्वभाव, अति महानन्द घन-विग्रह महागौरश्याम-युगल का महाभाव-प्रकाशक मधुरतर दास्य-भाव से भजन कर ॥१०१॥

[१०२]

सुस्निग्धाः सुकुमार-सुन्दरतराः स्वानन्द-निःस्यन्दिनः
सुप्रज्ञाः सुरुचः सुशीतलतरच्छायाः सुपुष्पान्विताः ।
स्वादीयाः सुफलैः सुगन्ध-मधुभिः पत्रैः शुभैः पल्लवै-
र्वृन्दाकानन उल्लसन्ति तरवः कृष्णे स्वाभावोज्ज्वलाः ॥

सुस्निग्ध, सुकुमार एवं सुन्दरतर स्वानन्द वर्षाकारी, सुन्दर ज्ञान एवं सुन्दर कान्ति युक्त, सुशीतलतर छाया युक्त, सुन्दर पुष्पों से शोभित, सुगन्ध-मधुयुक्त सुन्दर फलों से आस्वादनीय एवं शुभ पत्र पल्लव सहित श्रीकृष्ण में उज्ज्वल स्वभावमय वृक्षवृन्द प्रकाशित हो रहे हैं ॥१०२॥

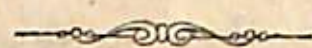
इति श्रीश्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचिते
श्री श्री वृन्दावन-महिमामृतम् का
दशमं शतक समाप्त हुआ ॥



भावी-प्रकाशन !

कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी-विरचित

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत



श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थरत्न से आज कौन अपरिचित है? किन्तु बँगला भाषा में रचित होने के कारण प्रायः हिन्दीसमाज इसके अपूर्व रसास्वादन से वञ्चित रह रहा है। अनेक महानुभावों ने श्रीचैतन्य-चरित प्रकाशित कर हिन्दी समाज में श्रीचैतन्य-गुण-लीला का सफल प्रचार किया है, परन्तु श्रीकविराज की सिद्धान्त प्रतिष्ठित वर्णन-शैली, सरस-मृदु-भावना, लीलाओं का साक्षात् अनुभवपूर्ण चित्रण तथा दार्शनिक तत्वों का सुन्दर विवेचन कविराज की सुलेखनी के बिना और कहाँ है ?

भावी प्रकाशन? मूल-ग्रन्थ ही है, बँगला पयार हिन्दी लिपी में ज्यों के त्यों उद्धृत हैं, नीचे उनका सरल हिन्दी अनुवाद है तथा फिर गूढ़ पयारों एवं श्लोकों का तात्पर्य विस्तार पूर्वक देकर विषय को अत्यन्त सरल कर दिया है जिस से प्रत्येक पाठक सहज में पूर्ण आस्वादन कर सकेगा। गौड़ीय सम्प्रदाय अनुयायियों के लिये नित्य-पाठ्य पुस्तक है।

इस भावी प्रकाशन के शीघ्र प्रकाशित करने के लिये महत्-कृपा एवं महत्-शुभाशीर्वाद की अनिवार्य अपेक्षा है एवं पाठक-गणों के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है।

निवेदक—

श्रीश्यामलाल हकीम,

वृन्दावन।

अन्य प्रकाशित पुस्तकें—

१. भक्तभाव संग्रह—

इस पुस्तक में अनेक भक्तों की भावपूर्ण कविताएँ एवं श्रीवृन्दावनस्थ रास-मण्डलियों के प्रायः समस्त रसीले पद, रसिया, कवित्त एवं सवैयादिकों का अपूर्व संग्रह है। उद्धवलीला रासलीला आदि का अद्‌भुत वर्णन है।

न्यौ० ।=)

२. श्रीवृन्दावन महिमामृतम्

(प्रथम एवं द्वितीय शतक) न्यौ० ॥)

३. श्रीवृन्दावन महिमामृतम्

(तृतीय एवं चतुर्थ शतक) तथा

श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र

न्यौ० ॥=)

४. श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् (प्रस्तुतग्रन्थ)

(पञ्चम से दशम शतक) न्यौ० १॥)

'श्रीमद्वैष्णव-सिद्धान्त-रत्न संग्रह'

(वैष्णवग्रन्थों का संक्षिप्त सार-संग्रह)



हिन्दी साहित्य में सिद्धान्त विषय पर यह सर्व प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें वैष्णवधर्म के प्रायः समस्त मूल तत्वों का समावेश है। श्रीकृष्ण-तत्व शक्ति-तत्व, धाम-तत्व, परिकर-तत्व, श्रीव्रजेन्द्रनन्दन, सृष्टि-तत्व, श्रीबलराम-तत्व, प्रेम-तत्व, श्रीराधा-तत्व, गोपी-तत्व, जीव-तत्व, पुरुषार्थ, सम्बन्ध-तत्व, अभिधेय-तत्व, प्रयोजन-तत्व, साध्य-साधन, साधु-संग, महत्-कृपा, गुरु-तत्व, श्रीगौर-सुन्दर-तत्व तथा नाम माहात्म्य आदिक पचीस तत्वों की इसमें गवेषणापूर्ण विस्तृत आलोचना की गई है।

न्यौछावर २) रु०



प्राप्ति स्थान—

(१) श्रीश्यामलाल हकीम, श्रीवृन्दावन।

(२) श्रीमोतीराम, बुकसेलर, श्रीवृन्दावन।

(३) श्रीराधेश्याम गुप्त, बुकसैलर, श्रीवृन्दावन।

(४) श्रीनन्दलाल विर्मानी ५/११ प्रताप मार्केट जगपुरा- बी, न्यूदिल्ली-१४ ।